श‍ृङ्गार विलासिनी

ŚṚṄGĀRA VILĀSINĪ

सम्पादकः

शिवशङ्कर त्रिपाठी, डी० फिल्०

कवि देवदत्त विरचिता

शृङ्गार विलासिनी

(प्रथम-आलोचनात्मक-संस्करणम्)

ŚṚṄGĀRA VILĀSINĪ

सम्पादकः

शिवशङ्कर त्रिपाठी, डी० फिल्०

भारतीय मनीषा सूत्रम्

दारागञ्ज · इलाहाबाद-६

प्रकाशकः
भारतीय मनीषा सूत्रम्
दारागंज · इलाहाबाद-६

©

प्रथम संस्करण : सं० २०३९
मूल्य : राज संस्करण ५०.००
साधारण संस्करण ४०.००

⊙

मुद्रकः
शुभचिंतक प्रेस
दारागंज · इलाहाबाद-६

ŚṚṄGĀRA VILĀSINĪ

[First Critical Edition]

Edited by

Dr. SHIVA SHANKAR TRIPATHI

D. PHIL.

Price : Delux Edition 50.00
Ordinary 40.00

Publisher
Bhārtīya Manīshā Sūtraum
Daraganj, Allahabad-6

⊙

First Edition : 2039 Vikram

⊙

Printed at
Shubhachintaka Press
Daraganj, Allahabad-6

Raso bhimāno haṅkāraḥ śṛṅgara iti gīyate.
Yo rthastasyaṅvayāt kāvyaṃ kamanīyatvamśrute.

—*Bhoja Deva.*

ŚṚṄGĀRA VILĀSINĪ

रसोऽभिमानोऽहङ्कारः शृङ्गार इति गीयते।
योऽर्थस्तस्यान्वयात् काव्यं कमनीयत्वमश्नुते।।

—भोजदेव

शृङ्गार विलासिनी

- भारतीय मनीषा सूत्रम् का उद्देश्य है—भारतीय प्राच्य साहित्य एवं संस्कृति का संरक्षण तथा पोषण ।

- सांस्कृतिक तथा पुरातात्विक स्थलों का अन्वेषण और उनके संरक्षण के उपायों की खोज ।

- प्राच्य दुर्लभ, अलभ्य साहित्य का प्रकाशन ।

- प्रस्तुत पुस्तक 'सूत्रम्' की प्रकाशन-योजना 'प्राचीन दुर्लभ ग्रंथमाला' के अन्तर्गत प्रकाशित की जा रही हैं । इस योजना के ही अधीन दो अन्य सर्वथा अलभ्य ग्रंथ— 1. 'रामकर्णामृतम्' 2, 'भट्टवेशकाव्यम्' प्रकाशनाधीन हैं ।

- शृंगार (रस) विलासिनी के प्रकाशन की योजना दो वर्ष पूर्व संस्थान ने निश्चित किया था । 'सूत्रम्' के अन्वेषक ने सतत प्रयास कर ग्रन्थ की तीन हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध कीं ।

- यह संस्करण प्राप्त तीनों प्रतियों के तुलनात्मक पाठभेद सहित तैयार किया गया है । योजनानुसार ग्रन्थ को हिन्दी और अंग्रेजी रूपान्तर के साथ प्रकाशन करना था । आर्थिक कठिनाई वश रूपान्तर सम्मिलित नहीं किया जा सका । तथापि संपादक की विद्वत्तापूर्ण हिन्दी-अंग्रेजी की भूमिका ग्रंथ को उपादेय बनाने में सक्षम है ।

- पुस्तक में नायिका भेद प्रकरण जिस सफलता के साथ विवेचित है, वह निश्चित ही एतद्विषयक गुरु आकारीय ग्रन्थों के लिये चुनौती है ।

- महाकवि देवदत्त अथवा देव हिन्दी साहित्य-अध्येताओं के लिए सुपरिचित हैं। उन्होने संस्कृत भाषा में भी काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ रचे यह विरले ही जानते रहे हैं। शृंगार विलासिनी की चर्चा हिन्दी के काव्यशास्त्रीय आचार्यों ने ससम्मान की है। सुसम्पादित होकर प्रथमतः प्रस्तुत है।

- उल्लेखनीय तथ्य है—तीन शती पूर्व कवि देव ने हिन्दी के दोहा, सोरठा, छप्पय और सवैया छन्दों को संस्कृत भाषा में लिखा। इससे पूर्व भी हिन्दी छन्दों का प्रयोग संस्कृत में किसी रचनाकार ने किया हो, यह कहना संदिग्ध है। बीसवीं शती में तो स्व० मथुरानाथ भट्ट ने सभी हिन्दी छन्दों को संस्कृत भाषा में लिखा।

- यह प्रथम और लघु प्रयास साहित्य-अध्येताओं के लिए यदि उपयोगी बन सका तो संस्थान को अपनी योजना क्रियान्वित करने में बल मिलेगा।

सूत्र-संवाहक
भारतीय मनीषा सूत्रम्
दारागंज इलाहाबाद-६

नायिका भेद : एक पर्यालोचन

श्रृङ्गार रसालम्बनं स्त्री नायिका—(रसमञ्जरी । १.१७)

नयति वशी करोति सा नायिका । (रसमञ्जरी की टीका व्यंग्यार्थ कौमुदी ।)

ये दोनों ही परिभाषाएँ समानार्थ बोधक हैं––जो नायक को वश में कर सके अथवा की प्रेयसी बन सके अथवा नायक को श्रृंगार मार्गावलम्बी होने के लिए उत्प्रेरित कर सके, वह नायिका है । सृष्टि का भी मूलाधार श्रृंगार ही है, इस कारण साहित्य में रस और रस में श्रृंगाररस का श्रेष्ठ स्थान है । श्रृंगाररस की आलम्बिका होने के कारण यह नायिका काव्य-शास्त्र में निरूपण का विषय बनी । स्त्री तथा पुरुष वर्ग की काम-विषयिणी प्रवृत्तियाँ, स्थितियाँ, उनकी मानसिक प्रतिक्रियाएँ तथा सहज सामान्य कार्य-कलाप नायिका-निरूपण की आधार भूत सामग्री हैं । आचार्यों ने विविध रूपों, प्रकृतियों, अवस्थाओं को दृष्टि में रखकर नायिका-विवेचन तथा उनके भेद का कथन किया । जिस प्रकार संस्कृत-काव्य-शास्त्र ने अपनी विकास-यात्रा धीरे-धीरे सहस्राधिक वर्षों के साहित्य, संस्कृति और समाज की इतिहास सामग्री, साधन, प्रसाधन, मंडन आदि विभिन्न सूत्र-संवाहक अभिज्ञान-विधानों, युगभाव-बोध, रास-विलास-जन्य आधानों को आत्मसात् करते हुए पूर्ण की है, उसी प्रकार नायिका स्वरूप विवेचन एवं उसके भेद-निरूपण ने भी भारतीय काव्य शास्त्र के विविध-बहुरंगी उपादानों की सौन्दर्य-श्रृंगारमयी-भावस्थली पर विहरकर स्थिरता ग्रहण किया है । अस्तु, यह नायिका-भेद-निरूपण विकास की इतिहास-भूमि पर विरम-रमकर—सर्वप्रथम कामशास्त्र विशारदों की मेधा तथा उनके रसमयी-बुद्धि-विलास का पाथेय बना, फिर नाट्यशास्त्र के आचार्यों के तर्क-मर्म का सन्दर्भ-संकेत बनकर अपनी अवस्थिति से उसमें जीवन्त हो सका एवं अन्त में काव्यशास्त्राचार्यों ने विषय की गूढ़ता, सार्वजनीन-इयत्ता को स्वीकारा, उनको उसमें अपने अर्थ-सन्दर्भ का भाव-बोध का आभास मिला । परिणामतः यहाँ नायिका-भेद विवेचन का प्रकरण रूप-रूपायित होकर विकास के स्वर्णिम-शिखर पर आरूढ़ हो सका । आज वही अपने क्रमिक विकासेतिहास की ओर पहुँच प्रत्येक साहित्य-रस-सेवी सहृदय-रस-रसिक जन के लिए आकर्षण और मोहन बन गया है ।

कामशास्त्र—

नायक-नायिका-भेद का सम्बन्ध स्पष्टतः रस प्रवाह एवं नाट्यप्रवाह से है परन्तु यह विषय काम प्रवाह से पृथक् नहीं किया जा सकता। कामशास्त्र-विषय-निरूपक ग्रन्थों— कामसूत्र, रतिरहस्य और अनंगरंग में नायिका की समीचीन चर्चा की गयी है। हाँ, यहाँ आचार्यों ने नायिका का लक्षण नहीं निरूपित किया अपितु गुण, प्रकृति और कर्म के परिप्रेक्ष्य में संक्षेपतः भेद कथन से ही विश्रान्ति ले ली है। 'नायिकास्तिस्रः कन्या पुनर्भू वेश्या च' (कामसूत्र-वात्स्यायन |१.५४)। नायिका तीन प्रकार की—कन्या, पुनर्भू एवं वेश्या। इन तीनों नायिकाओं के फिर दो-दो भेद—पुत्रफलदा कन्या, सुखफलदा कन्या, उपभुक्ता पुनर्भू, अनुपभुक्ता पुनर्भू तथा रूपजीवा वेश्या, गणिका वेश्या। रतिरहस्य तथा अनंगरंग में पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी एवं हस्तिनी संज्ञक नायिकाओं के लक्षण निरूपित किये गये। रतिरहस्य के कर्त्ता ने गुणानुक्रम में इनका नामोल्लेख किया है—

> पद्मिनीं तदनु चित्रिणीं ततः शंखिनीं तदनु हस्तिनीं विदुः ।
> उत्तमा प्रथमभाषिता ततो हीयते युवतिरुत्तरोत्तरम् ॥
>
> —(रतिरहस्य/१.१०)

कामसूत्र में जहाँ वात्स्यायन ने शश, वृष तथा अश्व तीन प्रकार के नायकों की गणना की वहीं पर उन्होंने मृगी, वडवा तथा हस्तिनी तीन नायिकाएँ भी परिगणित हैं।

नाट्यशास्त्र—

वस्तुतः विलासप्रिय और साहित्यरसिक प्राचीन आभिजात्य वर्गीय नागरजनों के लिए यह नायिका रसानुभूति का माध्यम स्वरूप तथा मनोरंजन का एक कलापूर्ण साधन रहा है। लक्ष्मीवान् जन की विलास-भूमि का निर्माण यह नायिका भेद विषयक कथन प्रायः रसिक समाज—गोष्ठी में प्रचलित था। रसिक समाज में प्रायशः शृंगाररस प्रधान नाट्यकृतियाँ अभिनीत होती रहीं। इस कारण नाटकों में नायिका का महत्वपूर्ण योगदान स्वीकारा गया। उसके लक्षण तथा विभिन्न रूपों पर भी विवेचन हुआ। भरत मुनि नाट्यशास्त्र के प्रथम आचार्य हैं। उन्होंने सामान्याभिनय प्रकरण में लिखा—

त्रिविधा प्रकृतिः स्त्रीणां नानासत्त्व समुद्भवा ।
वाह्या चाभ्यन्तरा चैव स्याद् बाह्याभ्यन्तरा परा ।।

—(२४.१४३)

इसी प्रकार—

'स्त्रीणां च पुरुषाणां च उत्तमाधममध्यमाः ।' (२४.१)

मानव मात्र की चारित्रिक प्रवृत्तियां तीन प्रकार की होती हैं—उत्तम मध्यम एवं अधम । अपनी इसी मानसिकता से उन्होंने सामान्याभिनय एवं वैशिक अध्यायों में उत्तमा, मध्यमा और अधमा नायिकाओं का वर्णन किया । प्रियतम द्वारा अपराध होने पर भी परुष बचनों का प्रयोग जो न करे, उसके दोषों तक का गोपन करे और जो क्षण भर के लिए क्रोधाभिभूता हो, वह उत्तमा । विपक्षी के प्रति असूया की भावना रखने वाली, सहज ही रुष्ट होने वाली एवं सहज अनुनय पर ही प्रसन्नचिता हो जाने वाली नायिका मध्यमा है । बिना किसी कारण क्रोध करने वाली, बहुत समय तक क्रोधाभिभूत रहने वाली तथा प्रणयाभिसार काल में प्रतिकूल व्यवहार करने वाली अधमा नायिका है । आगे आचार्य भरत ने उसी प्रकरण में 'सुखस्य हि स्त्रियो मूलम्' कहकर शील अर्थात् प्रवृत्ति के अधार पर बाईस प्रकार की नायिकाएं वर्णित की हैं—

देवतासुरगन्धर्वरक्षो नागपतत्रिणाम् ।
पिशाचऋक्षव्यालानां नरवानरहस्तिनाम् ।।

मृगी मीनोष्ट्रमकर खर सूकरवाजिनाम् ।
महिषाजगवादीनां तुल्यशीलाः स्त्रियः स्मृताः ।।

—नाट्यशास्त्रम्/२२-६५-६६

यहाँ विभिन्न योनियों में उत्पन्न होने वाले जीवों के शील चरित के समान आचरण, प्रवृत्ति के अनुसार नायिकाओं का लक्षण निरूपित किया गया है । यथा–देवता (स्निग्ध अंगोवाली), असुर (कलहप्रिया, अत्यन्त निष्ठुरा), गन्धर्व (स्मित सहित भाषण करने वाली), नाग (तीक्ष्ण नासिका वाली), राक्षस (रक्तवर्ण और विस्तीर्ण नेत्रों वाली), पिशाच सुरत काल में कुत्सित आचरण करने वाली), यक्ष (मदिरा, आमिष आदि में रुचि रखने वाली),

व्याघ्र (उद्धत प्रकृति), नर (धर्मार्थ-काम निरता), कपि (भूरे वर्ण के रोमवाली), हस्ति (दीर्घ हनु और उन्नत ललाट वाली), मृग (स्वल्पोदरी विस्तृतनयन), मत्स्य (लम्बे स्थूल आकार वाली), उष्ट्र (लम्बे ओष्ठ, अत्यन्त उठी हुई ग्रीवा), मकर (ढोल विशेष की आकृति वाली), खर (स्थूल जिह्वा, ओष्ठ वाली और रतियुद्धप्रिया), सूकर (पतला कस्तक, पृष्ठ भाग और बड़ा मुख वाली), गाय (क्लेश सहन करने वाली) और अज (कृश शरीर, शीघ्र चलने वाली)। भरत पश्चात् न किसी नाट्यार्य ने और न किसी काव्य शास्त्र प्रणेता ने ही नायिकाओं के इन लक्षणों का उल्लेख किया। पश्चात् कालिक आचार्यों में दशरूपककार धनंजय, शृंगार तिलक प्रणेता रुद्रभट्ट द्वारा विवेचित लक्षण एवं भेदोपभेदों का अनुसरण किया गया। कर्मानुसार वेश्या, कुलजा और प्रेष्या नायिका के तीन भेद हैं। यही यदि वयानुक्रम में परिगणित की जायें तो नाट्यशास्त्र के ही अनुसार वासक सज्जा, विरहोत्कंठिता स्वाधीन पतिका, कलहान्तरिता, खण्डिता, विप्रलब्धा, प्रोषितभर्तृका, एवं अभिसारिका नायिका के आठ भेद हैं (नाट्यशास्त्र/२०/२०३-२०४)। वस्तुत. नायिकाओं के यही प्रसिद्ध आठ भेद हैं।

आचार्य भरत के पश्चात् धनञ्जय के 'दशरूपक' में नायिका एवं उनके भेदों का नाट्यशास्त्र के परिप्रेक्ष्य को आधार मानकर शास्त्रीय निरूपण किया गया है। दशरूपककार ने नायिका-विवेचन नाटक-नायक निरूपण प्रसंग में किया है, यहाँ शृंगारालम्बनरूप का माध्यम नहीं स्वीकारा गया है--'स्वान्या साधारणस्त्रीति तद्गुणा नायिका त्रिधा।' (प्रकाश/२-१५)—नायक के समान गुणों वाली नायिका तीन प्रकार की होती है—स्वस्त्री (स्वीया), परस्त्री (परकीया) और साधारण स्त्री (सामान्या)। स्वीया के तीन भेद—मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा। फिर मध्या तथा प्रगल्भा के तीन-तीन भेद--धीरमध्या, अधीरमध्या, धीराधीरमध्या, धीरप्रगल्भा, अधीरप्रगल्भा, धीराधीरप्रगल्भा पुनः 'द्वेधा ज्येष्ठा कनिष्ठा चेत्यमुग्धा द्वादशोदिताः'--(प्रकाश।२-२०)--अमुग्धा (मध्या एवं प्रगल्भा) के ज्येष्ठा तथा कनिष्ठा दो भेद होते हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर बारह भेद होते हैं। मुग्धा एक ही प्रकार की होती है। पुनः अवस्थानुसार (जैसा कि नाट्यशास्त्र में है) भी आठ भेद परिगणित हैं--'आसामष्टाववस्थाः स्युः स्वाधीनपतिकादिकाः'—(२-२३)। इनकी आठ अवस्थाएँ स्वाधीनपतिकादि होती हैं --'स्वाधीनपतिका वासकसज्जा, विरहोत्कण्ठिता, खण्डिता,

कलहान्तरिता, विप्रलब्धा, प्रोषितप्रिया, अभिसारिकेत्यष्टौ स्वस्त्रीप्रभृतीनामवस्था: । स्वाधीन-पतिका, वासकसज्जा, विरहोत्कण्ठिता, खण्डिता, कलहान्तरिता, विप्रलब्धा, प्रोषितप्रिया तथा अभिसारिका ये स्वकीया स्त्री आदि की आठ अवस्थाएँ हैं ।

भरत नाट्यशास्त्र तथा दशरूपक के अतिरिक्त यह नायिका भेद प्रकरण अग्निपुराण एवं काव्यालंकार आदि अन्य काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में विशेसत: सांगोपांग भेदोपभेदों सहित निरूपित है । इन ग्रन्थों में नायिका को नायक के समान गुणवाली मानकर नहीं अपितु उसके निज गुण और प्रकृति, हाव, भाव तथा चेष्टाओं को आधार स्वीकार कर निरूपित किया गया है ।

शारदातनयकृत 'भावप्रकाशनम्' तथा शिंगभूपालरचित, 'रसार्णवसुधाकरम्' दोनों ही नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में नायिका भेद का निरूपण मिलता है ।

भावप्रकाशनम्—

इस ग्रन्थ में आचार्य भरत का अनुसरण करते हुए नायिका भेद विवेचित है । शारदातनय ने भी देव शीला, दैत्यशीला, गन्धर्वशीला, यक्षांगना, राक्षसशीला, पिशाचशीला, नागशीला, मर्त्यशीला आदि भेद कथन कर क्रमश: उदाहरण भी प्रस्तुत किया है । साथ ही उदात्ता, उद्धता, शान्ता और ललिता चार प्रकार के भेद प्रकृति और प्रवृत्ति के आधार पर बता कर इन चारों नायिकाओं के वेशभूषाशीलादि गुणों तथा धर्मादि का विवेचन भी किया गया है । अभिनय-अभिनेयता की दृष्टि से वासकसज्जा आदि आठ विधा भी वर्णित हैं । दशा के अनुसार ग्रन्थकर्त्ता ने विप्रलब्धा, विरहोत्कण्ठिता, अभिसारिका केवल तीन ही परिगणित किया है । इस प्रकार नायिकाओं की कुल संकलित संख्या 13(स्वीया) +2 (परकीया) +1 (सामान्या) 16 हुई, वासकसज्जा आदि 8 उनके क्रमश: भेद अर्थात् 128 तथा अन्त में प्रत्येक के उत्तम, मध्यम और अधम तीन-तीन भेद अर्थात 128 × 3कुल 384 भेद हो गये ।

रसार्णवसुधाकरम्—

शिंगभूपाल ने रसान्तर्गत विभावना प्रसंग में नायक-नायिका का निरूपण किया है । श्रृंगारालम्बन का परिचय देते हुए उन्होने लिखा है—

आधाराविषयत्वाभ्यां नायको नायिकापि च ।
आलम्बनं मतं तत्र नायको गुणवान् भवेत् ।।

इस कारण नायिका-भेद निरूपण भी इस ग्रन्थ में शृंगार को ही आधार मानकर किया गया है । स्वीया नायिका के मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा—पूर्वाचार्यों द्वारा निरूपित तीन भेद को ही स्वीकारा है । उन्होंने मुग्धा नायिका के वयोमुग्धा, नवकामा, रतौवामा, मृदुकोपा सलज्जरतिशीला, क्रोधेनाऽपभाषमाणा रुदती ये छः भेद, मध्या के समलज्जामदना, प्रोद्यत्ता-रुण्यशालिनी और मोहान्तसुरता ये तीन भेद; पुनः मानवृत्ति के अनुसार धीरा, अधीरा, धीराधीरा तीन भेद निरूपित किया है । प्रगल्भा के दो भेद- सम्पूर्णयौवनोन्मत्ता और प्ररूढमन्मथा; फिर मानवृत्ति के पक्ष में धीरा आदि तीन भेद गिनाये गये हैं । इसी प्रकार परकीया के अनूढा और परोढा दो भेद एवं सामान्या के भी दो भेद––रक्ता तथा विरक्ता बताये हैं । उपसंहार करते हुए प्रोषितभर्तृका आदि उत्तमा, मध्यमा एवं अधमा भेद कथन सहित आठ प्रकार भी नायिकाओं के परिगणित हैं ।

काव्यशास्त्र—

आचार्य भरत ने उत्तम, मध्यम और अधम तीन प्रकार की अंगनाओं का विवरण देते हुए नायिका के यौवन को चार भागों में विभाजित किया है-- प्रथम यौवनम्, द्वितीय यौवनम्, तृतीय यौवनम् तथा चतुर्थ यौवनम्–'सर्वासामपि नारीणां यौवनलाभा भवन्ति चत्वारः । नेपथ्य रूपवेषैर्गुणैस्तु शृंगारमासाद्या—(नाट्य०।२३-४०) । यौवनक्रम की यही चार अवस्थाएँ हैं एवं इस कारण नायिका के तीन भेद-मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा किया गया। काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों तथा साहित्यरस-रसिक-सहृद जनों में यही नायिकाएँ मोद-दायिका बन कर निरूपण का विषय हो गयीं । चतुर्थ यौवन शृंगारशत्रु रूप होने के कारण सहृदय जन मानस में स्थान न पा सका । काव्यशास्त्रीय नायिका भेद विवेचन का मूलस्रोत नाट्य-शास्त्र ही है । हाँ नाट्याभिनय प्रसंगानुकूल वर्णित नायिकाओं को अपने विवेचन में साहित्य शास्त्रियों ने नहीं ग्रहण किया । अग्निपुराण एवं शृंगारतिलक ग्रन्थों में नायिका भेद निरूपण आलम्बन विभाव के अन्तर्गत प्रस्तुत किया गया जो नाट्यशास्त्रीय परम्परा से भिन्न है । अग्नि पुराण में स्पष्टतः आलम्बन विभाव कारण स्वरूप मानकर उल्लेख है––

स्वकीया परकीया च पुनर्भूरिति कौशिकः ।
सामान्या न पुनर्भूरित्याद्या बहुभेदतः ॥

—अग्निपुराण/३३९-४१

किन्हीं-किन्ही ग्रन्थों में आत्मीया, परकीया और सर्वाङ्गना, नायिका के ये तीन रूप परिगणित किये गये हैं । रुद्रट के काव्यालंकार में शृंगाररसाधीना ही नायिकाओं का सविस्तर विवेचन मिलता है । इस ग्रन्थ में नायिकाओं का भेदोपभेद निरूपण अन्ततोगत्वा तीन सौ चौरासी संख्यातक पहुँच गया है । रुद्रट ने प्रथमतः शृंगाररस प्रसंग में श्रव्यकाव्य के लिए भी नायिका स्वरूप एवं भेद निरूपण की आवश्यकता का सम्यक् प्रतिपादन किया है ।

भोजदेव--सरस्वती कण्ठाभरण एवं शृङ्गार प्रकाश

भरत के मत का अनुसरण करते हुए महाराज भोजदेव ने नायिका भेद का निरूपण सम्यक् रीति से सविस्तर किया है । 'पुनर्भू' नायिका की चर्चा कामशास्त्र के पश्चात् अग्निपुराण में है, भोज ने भी यह भेद स्वीकारा है—

गुणतो नायिकाऽपि स्यादुत्तमामध्यमाधमा ।
मुग्धा मध्या प्रगल्भा च वयसा कौशलेन वा ॥
धीराधीरा च धैर्येण स्वान्यदीया परिग्रहात् ।
ऊढानूढोपयमनात् क्रमाज्ज्येष्ठा कनीयसी ॥
मानर्द्धेरुद्धतोदात्ता शान्ता च ललिता च सा ।
सामान्या च पुनर्भूश्च स्वैरिणी चेति वृत्तितः ॥
आजीवतस्तु गणिका रूपाजीवा विलासिनी ।
अवस्थातो ऽपरा चाष्टौ विज्ञेयाः खण्डितादयः ॥

—(सरस्वती०/५-११०-११३)

'शृंगारप्रकाश' में यह नायिका भेद अधिक विस्तार के साथ वर्णित है । हाँ, अधमा और ज्येष्ठा नायिकाएँ उल्लिखित नहीं । स्वीया एवं परकीया दोनों के पृथक्-पृथक् दस भेद बताये गये हैं—(१) उत्तमा (२) मध्यमा (३) कनिष्ठा (४) ऊढा (५) अनूढा (६) धीरा

(७) अधीरा (८) मुग्धा (९) मध्या और (१०) प्रगल्भा । भेदोपभेदों का समग्रतः संकलन करने पर कुल १४३ प्रकार की नायिकाएँ उल्लिखित हैं । 'पुनर्भू' नायिका के—अक्षता, क्षता, यातायाया और यायावरा चार भेद तथा सामान्या के—ऊढा, अनूढा, स्वयंवरा, स्वैरिणी एवं वेश्या ये पाँच भेद किये गये हैं । भोज ने अपने ग्रंथ में मध्या और प्रगल्भा के 'धीराधीरा' संज्ञक तृतीय भेद को नहीं स्वीकारा एवं उन्होंने ज्येष्ठा का नामोल्लेख न करके 'पूर्वानूढा' को ही ज्येष्ठा अंगीकार किया है । सामान्या नायिका के भोजकृत भेद विवेचन को काव्यालंकार शास्त्र में अपूर्व ही मानना पड़ेगा । इसके पश्चात् 'मन्दार-मरन्दचम्पू' ग्रंथ में कृष्णकवि ने 'क्षता, अक्षता' आदि नायिका-विवेचन में भोजदेव का उल्लेख किया है ।[2]

हेमचन्द्र—काव्यानुशासन

काव्यानुशासन में हेमचन्द्र ने भी नायिका-विवेचन किया है, किन्तु यहाँ अत्यन्त संक्षिप्त विवरण है । मध्या, मुग्धा और प्रगल्भा तीनों के दो-दो भेद वय एवं कौशल के आधार पर किया गया है । यथा—वयसा मुग्धा, कौशलेन मुग्धा, वयसा मध्या, कौशलेन मध्या और इसी प्रकार वयसा प्रगल्भा, कौशलेन प्रगल्भा । धीरा, अधीरा आदि भेद भी मध्या आदि नायिकाओं के स्वीकारे गये हैं । भरत के नाट्यशास्त्रीय रीत्यानुसार पूर्वमूढा ज्येष्ठा, पश्चादूढा कनिष्ठा नायिकाएँ कही गयी हैं । परकीया नायिका के मात्र तीन ही भेद—विरहोत्कण्ठिता, अभिसारिका तथा विप्रलब्धा माने हैं ।

इसके अतिरिक्त वाग्भटालंकार तथा प्रतापरुद्रयशोभूषण ग्रन्थों में भी संक्षेपतः नायिका भेद का कथन है । विवेचन में कोई उल्लेखनीय वैशिष्ट्य नहीं है । वाग्भट्ट ने चार—अनूढा, स्वकीया, परकीया और परांगना (सामान्या) भेद लिखा हैं ।

---

1. पुनर्भूरक्षता क्षतायातायाता यायावरा च । (शृंगार प्रका०/प्रकाश १५)
2. अक्षता च क्षता यातायातायायावरेत्यपि ।
पुनश्चतुर्धा कथिताः पूर्वैर्भोजादिभिर्बुधैः ।।
यातायाता तु युगपदूढानेकैस्तु भर्तृभिः ।
यथा पाण्डुसुतैरूढा द्रुपदस्य कुमारिका ।। इति

आचार्य विश्वनाथ—साहित्य दर्पण

संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में 'साहित्य दर्पण' का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इस ग्रन्थ में नायिका भेद का विद्वत्तापूर्ण शैली में विवेचन मिलता है। नायिका के प्रमुख भेद अपने पूर्वाचार्यों द्वारा निरूपित ही स्वीकार कर आचार्य विश्वनाथ ने उपभेद-कथन में नवीनता की कल्पना की है। यथा—स्वीया के मुख्य मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा तीन भेदों के उपभेद परिगणन सर्वथा नवीन है—मुग्धा—(1) प्रथमावतीर्णयौवना (2) प्रथमावतीर्णमदन-विकारा (3) रतौ वामा (यह शिंगभूपाल ने भी स्वीकारा है) (4) माने मृदु (5) समधि-कलज्जावती।

मध्या—(1) विचित्रसुरता (2) प्ररूढ यौवना (3) प्ररूढतारुण्या (4) ईषत्प्रगल्भ वचना (5) मध्यमव्रीडिता।

प्रगल्भा—(1) स्मरान्धा (2) गाढतारुण्या (3) समस्तरतकोविदा (4) भावोन्नता (5) स्वल्प व्रीड़ा (6) आक्रान्तनायका। मध्या, प्रगल्भा के धीरा आदि तीनों भेद एवं ज्येष्ठा और कनिष्ठा उपभेद भी वर्णित हैं।

साहित्यदर्पण में इस प्रकार मध्या तथा प्रगल्भा के बारह भेद, मुग्धा एक भेद, स्वीया के कुल तेरह भेद हुए। परकीया के कन्या-परोढा दो भेद, सामान्या एक भेद, अब कुल सोलह प्रकार की नायिकाएँ हो गयीं। अवस्थिति के अनुसार स्वाधीनभर्तृका आदि आठ भेद फिर उत्तम, मध्यम और अधम भेद से तीन प्रकार की नायिकाएँ। अन्त में यदि भेदोप-भेदों का संकलन कर दिया जाय तो—$16 \times 8 = 128 \times 3 = 384$ प्रकार की नायिकाओं की गणना इस ग्रंथ में की गयी है। जैसा कि ऊपर की पंक्तियों में कहा—परकीया के पूर्वाचार्यों द्वारा विवेचित तीन ही भेद माने हैं—(1) विरहोत्कण्ठिता (2) अभिसारिका (3) वासकसज्जा।[1]

---

1. यवस्थैवं परस्त्री स्यात् प्रथमं विरहोन्मना:।
तर्तोऽभिसारिका भूत्वाऽभिसरन्ती व्रजेत स्वयम्॥
संकेताच्च परिभ्रष्टा विप्रलब्धा भवेत् पुन:।
पराधीनपतित्वेन नान्यावस्थात्र संगता॥

—(साहित्य दर्पण। १-१६७)

भानदत्त--रसमञ्जरी

रसों में श्रृंगाररस सर्वश्रेष्ठ माना जाता है, रसांगों में उसका आलम्बन विभाव और उसमें नायिका का महत्त्व। इसी दृष्टि से इस ग्रन्थ में नायिका निरूपण की प्रमुखता है। यह रस मंजरी नायिका भेद विषय के निरूपण में सर्वथा नवीन परम्परा का प्रवर्तक ग्रन्थ है। इससे पूर्व काव्यशास्त्रीय आचार्यों ने नायिकादि निरूपण विषय को आधार मान स्वतंत्र ग्रन्थ की रचना नहीं की थी। रस मंजरी की रचना के पश्चात् इस विषय को लेकर संस्कृत हिन्दी एवं अन्य भाषाओं में ग्रन्थ प्रणयन प्रारम्भ हुआ। परिणामतः इस ग्रन्थ और इसमें विवेचित विषय-वस्तु का स्वतंत्र महत्व है।

रस मंजरी में भी भानुदत्त ने स्वीया, परकीया, सामान्या—पूर्वाचार्यो द्वारा विवेचित तीन भेदों का उल्लेख कर मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा प्रसिद्ध तीनों भेद स्वीकारा है। उन्होंने मुग्धा के चार नवीन भेद किया—अज्ञात यौवना, ज्ञात यौवना, नवोढा और विश्रब्ध नवोढा। यह संज्ञा ग्रन्थकार ने, अंकुरित यौवन, रूप की विशिष्टता के आधार पर दिया है, स्पष्टतः भेद की संज्ञा नहीं दी है। मध्या की एक नूतन व्याख्या 'समानलज्जामदनेत्यभिहिता' एवं 'अतिविश्रब्धनवोढा' दी गयी है। प्रगल्भा के भी दो रूप रतिप्रीतिमती तथा आनन्द सम्मोहिता बताये गये हैं। मध्या, प्रगल्भा के धीरा आदि उपभेद, इस प्रकार छः, ज्येष्ठा, कनिष्ठा भेद से बारह और एक मुग्धा कुल तेरह भेद जो साहित्य दर्पण में चर्चित हैं, वही इस ग्रन्थ में भी हैं। इसी प्रकार परकीया के भी दोनों भेद परोढा और कन्यका स्वीकार किया है। फिर भानुदत्त ने इन्हें षट्संख्यक परिगणित किया—1. गुप्ता 2. विदग्धा 3. लक्षिता 4. कुलटा 5. अनुशयाना 6. मुदिता। गुप्ता तीन प्रकार की— 1. सुरतगोपना 2. वृत्त सुरतगोपना 3. वर्तिष्यमाण सुरतगोपना। विदग्धा—वाग्विदग्धा एवं क्रियाविदग्धा दो प्रकार की होती हैं। अनुशयाना—वर्तमान स्थानविघटनादनुशयाना, भाविस्थानाभाव शंकया अनुशयाना तथा स्वानधिष्ठान संकेत स्थलं प्रति भर्तुर्गमनानुमानादनुशयाना। अनुशयाना के तीन भेद हुए। परकीया के इन स्वरूपों के निरूपण का कारण निश्चित ही तत्कालीन समाज में आभिजात्यवर्गीय नागरजनों में विकसित कामशास्त्रानुसारी विलास-लास प्रियता रही होगी। यदि पर्यवेक्षण किया जाय तो रसमंजरी कर्ता द्वारा वर्णित गुप्ता, विदग्धा, लक्षिता, कुलटा, अनुशयाना एवं मुदिता का अर्न्तभाव परकीया के ही अन्तर्गत हो जाता है।

भानुदत्त ने पूर्वाचार्यों के ही समान सामान्या का एक रूप माना। संकलन करने पर सोलह प्रकार की, फिर उनके तीन रूप—1. अन्य सम्भोग दुखिता 2. वक्रोक्तिगर्विता (क) प्रेमगर्विता (ख) सौन्दर्यगर्विता) इस प्रकार 13 (स्वीया) +2 (परकीया) + 1(सामान्या) कुल 16। प्रत्येक नायिका के अवस्थानुसार 8 भेद, अतः $16 \times 8 = 128$ और पुनः प्रत्येक के उत्तम, मध्य एवं अधम तीन-तीन भेद। परिणामतः रसमंजरी में वर्णित नायिकाओं की संख्या $128 \times 3 = 384$ हुई। इतना ही नहीं पुनः दिव्य, अदिव्य तथा दिव्यादिव्य प्रत्येक के तीन-तीन भेद स्वीकारने पर $384 \times 3 = 1152$ संख्या होती है।

हजरत सैय्यद अकबर शाह हुसैनी-शृङ्गारमञ्जरी

अकबरशाह उपनाम 'बड़े साहेब' द्वारा यह ग्रन्थ तेलुगुभाषा में रचित है। इसका संपादन डॉ० वी० राघवन् ने किया तथा प्रकाशन सन् १९५१ में हैदराबाद राज्य के पुरातत्त्व विभाग ने। ग्रन्थ के भूमिका भाग में ग्रन्थकार ने स्पष्ट किया है—रसमंजरी, आमोदपरिमल (टीका), शृंगारतिलक, रसिकप्रिया, रसार्णव, प्रतापरुद्रीय, सुन्दर शृंगार, नवरसकाव्य, दशरूपक, विलासरत्नाकर, काव्यपरीक्षा, काव्य प्रकाश आदि प्राचीन ग्रंथों का आलोडन-विलोडन करके युक्तियुक्त लक्षणों के प्राचीन उदाहरणों के आधार पर नायिका भेदों की कल्पना कर, जिनके उदाहरण न थे उनके उदाहरणों की रचना कर, जिनके नाम न थे उनके नामकरण करके, प्राचीन लक्षण ग्रन्थों से उपयुक्त उदाहरण सम्बन्धित नायिका विवेचन में लिखकर यह रचना की गयी है। नवरसों में शृंगाररस की प्रमुखता होने के कारण शृंगार रसालम्बन विभाव के अनुरूप नायिका निरूपण किया गया है।

शृंगार मंजरी का आधार भानुदत्त विरचित रसमंजरी ही है। यत्र-तत्र ग्रन्थकार ने नवीन उपभेदों की परिकल्पना अवश्य कर डाली है। यथा—परकीया के दो भेद कन्या और परोढा। फिर परोढा दो प्रकार की—1. उद्बुद्धा (स्वयमनुरागिणी) 2. उद्बोधिता (नायकप्रेरिता) तब उन्होंने धीरा, अधीरा, धीराधीरा में तीन भेद उद्बोधिता के स्वीकारा है। इसी प्रकार उद्बुद्धा के तीन रूप बताये हैं—गुप्ता, निपुणा एवं लक्षिता। निपुणा के भेद—1, वाङ्निपुणा। 2. क्रियानिपुणा 3. पतिवञ्चननिपुणा। प्रथम दो तो 'वाग्विदग्धा' एवं 'क्रियाविदग्धा' के ही दूसरे नामकरण हैं, तीसरा भेद नवीन कल्पना है। लक्षिता दो प्रकार की—1. प्रच्छन्न लक्षिता 2. प्रकाश-लक्षिता। 'प्रकाश लक्षिता' के 1. कुलटा 2.

मुदिता 3. अनुशयाना 4. साहसिका भेद किये गये हैं। चतुर्थ, साहसिका, नया भेद है। इस ग्रन्थ में सामान्या नायिका के पाँच सर्वथा नवीन भेद किये गये हैं—1. स्वतन्त्रा 2. जनन्यधीना 3. नियमिता 4. क्लृप्तानुरागा 5. कल्पितानुरागा।

इसी प्रकार 'अन्यसम्भोगदु:खिता' और 'मानवती' का कथन 'खण्डिता' के प्रसंग में आया है। अवस्था के अनुसार विवेचित अष्ट नायिकाओं में एक नयी 'वक्रोक्तिगर्विता' जोड़ी गयी है। स्वाधीनपतिका के भेद कथन में युक्तियुक्त अवधारणा की है। स्वीया–मुग्धा-मध्या प्रगल्भा–परकीया–सामान्या—दूतीवञ्चिका एवं भाविशंकिता, में श्रृंगार मंजरी में वर्णित आठ विधाएँ। प्रोषितपतिका के स्थान पर अवसित-प्रवासपतिका'। विरहोत्कंठिता के दो भेद—कार्यविलम्ब सुरता और अनुत्पन्न सम्भोगा। फिर 'अनुत्पन्न सम्भोगा' के चार भेद बताये हैं—1. दर्शनानुतापिता 2. श्रवणानुतापिता 3. चित्रानुतापिता 4. स्वप्नानुतापिता। विप्रलब्धा के दो भेद—नायकवञ्चिता तथा सखीवञ्चिता। खंडिता छः प्रकार की-धीरा, अधीरा, धीराधीरा, मानवती, अन्यसम्भोग-दु:खिता एवं ईर्ष्यागर्विता। ये भेदोपभेद ग्रंथकार ने पूर्ण विस्तार के साथ विवेचित किया है। ऐसा विस्तृत रूप से निरूपण अन्य किसी ग्रन्थ में उपलब्ध नहीं है। इतने से ही 'बड़े साहेब' ने विराम नहीं लिया। अपितु उन्होंने प्रोषित पतिका' तथा 'कलहान्तरिता' के भी भेद बताये है। यथा—ईर्ष्याकलह तथा प्रणयंकलह वाली दो प्रकार की कलहान्तरिता। प्रोषित पतिका-प्रवसत्पतिका-प्रवस्यत्पतिका एवं सद्य-नुतापिता में प्रोषितपतिका के भेद किये गये हैं। परकीयाभिसारिका – 1. ज्योत्स्नाभिसारिका 2. तमोभिसारिका 3. दिवाभिसारिका 4. गर्वाभिसारिका 5. कामाभिसारिका पाँच प्रकार की परिगणित की गयी हैं।

अनेकशः नवीन भेदोपभेदों की उद्भावना के कारण 'श्रृंगारमंजरी' नायिका भेद-निरूपण विषयक ग्रन्थों में अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

नायिका भेद निरूपण विषयक अन्य कतिपय ग्रन्थ भी नामोल्लेखनीय हैं—श्रृंगारामृतलहरी, रसरत्नहार, रसचन्द्रिका, सदुक्तिकर्णामृतम्, शार्ङ्गधर पद्धति, पद्यरचना आदि के अतिरिक्त रसिक जीवनम्[1]। इन ग्रन्थों में नयी उद्भावनाएँ नहीं हैं। गौडीय-वैष्णवपरम्परा

1. संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय—लघुग्रन्थमाला २७ (सं० २०३४) रचयिता—पण्डित रामानन्दपतित्रिपाठी सं० श्री करुणापति त्रिपाठी

में भी नायिका विवेचन किया गया है। कवि कर्णपूर-विरचित अलंकारकौस्तुभ में नायिका के भेदोपभेद कुल 1908 संख्या तक पहुँचा दिये गये हैं।

यह है नायिका भेद-निरूपण विषयक ग्रन्थों का सूक्ष्म पर्यालोचन और नायिका भेद की परम्परा का ऐतिहासिक सिंहावलोकन। अब अपने ग्रन्थकार का विदेवदत्त की कृति 'श्रृंगार विलासिनी' के विषय-वस्तु-निरूपण एवं पूर्वाचार्यों द्वारा विनिश्चित नायिका स्वरूपों का तुलनात्मक किन्तु संक्षिप्त आकलन हम प्रस्तुत करेंगे।

कवि देवदत्त—

कवि देवदत्त अथवा देव का हिन्दी साहित्य के श्रृंगार-कालीन कवियों में विशिष्ट स्थान रहा है। नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित, 'हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण' (पृष्ठ 432–33) में देव को 72 ग्रन्थों का रचयिता बताया गया है—'देवकवि—वास्तविक देवदत्त संवत् 1370 घोसरिया (इटावा) समेन गाँव (मैनपुरी) निवासी। फफूंद (इटावा) कुशलसिंह के आश्रित।' शिवसिंह सरोज ने देवकृत बहत्तर ग्रन्थ बताये हैं। डॉ० नगेन्द्र ने प्राप्य तथा अप्राप्य कुल ग्रन्थों की संख्या उनतीस स्वीकार की है।[1] ग्रन्थों की सूची में श्रृंगार विलासिनी' का भी नामोल्लेख है। प्राप्त ग्रन्थ हैं—भावविलास, रसविलास, भवानी विलास, कुसलविलास, जातिविलास, वृक्षविलास, पावसविलास, राधिका विलास, सुजानविनोद, सुमित्रविनोद, वैराग्यशतक (जगद्दर्शनपचीसी, आत्मदर्शनपचीसी, तत्त्वदर्शनपचीसी, प्रेमपचीसी), या देवशतक, नीतिशतक, प्रेमरंग, सुखसागरतरंग, रसानन्द-लहरी, रागरत्नाकर, प्रेमचन्द्रिका, प्रेमदीपिका, प्रेमदर्शन, अष्टयाम, सुन्दरीसिन्दूर काव्य रसायन या शब्दरसायन, या देवरसायन, देवचरित्र, देवमाया-प्रपंच (नाटक), नखशिख। कुछ अप्रकाशित ग्रन्थ हैं बखतविलास, बखतविनोद, बखतशतक, वृत्तमंजरी, माधवगीत, कालिका-स्तोत्र, नृसिंहचरित्र, प्रज्ञानशतक। संस्कृत ग्रन्थों में श्रृंगार-विलासिनी, नामोल्लेख है। स्पष्ट है कवि बहुमुखी प्रतिभा संपन्न कवि थे। विविधता की ओर प्रवृत्त होने की रुचि रही। उन्होंने न केवल साहित्य अपितु संगीत तथा तत्त्वदर्शन के भी गूढ़ पक्षों का

1. देव और उनकी कविता—(पृ० १२)

दिग्दर्शन पाठकों को कराया। उन्होंने कविता की रचना की और शास्त्र का निर्माण भी। काव्य और काव्यशास्त्र दोनों के विषय में देव ने नवीन उद्भावनाएँ प्रस्तुत कीं।

शृंगार विलासिनी

कवि देव हिन्दी साहित्य में शृंगारकालीन श्रेष्ठ कवि हैं।[1] उनका अपना स्थान है। उन्होंने अपने युग की रीति-परम्परा का निर्वाह किया। प्रस्तुतग्रन्थ संस्कृत भाषा में होने के कारण हिन्दी साहित्य-अध्येता एवं संस्कृत-विद्वान् दोनों ही के लिए विस्मयकारक हो सकता है, परन्तु हमें रंचमात्र भी विस्मयापन्न नहीं कर पा रहा है। कारण हिन्दी साहित्य की रीति-रचनाएँ संस्कृत साहित्य से ही पोषण प्राप्त कर जीवन्त हुई हैं। देव एक बहुमुखी प्रतिभा-सम्पन्न अधीत विद्वान् रहे, यदि संस्कृत में रचना कर दी तो आश्चर्य क्यों? शृंगारमंजरी की रचना महाकवि देव ने की इसमें सन्देह के लिए स्थान नहीं है। हम नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित एवं डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल द्वारा संपादित हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों के चौदहवें त्रैमासिक विवरण से इस विषय को पुष्ट करने वाला अंश उद्धृत कर रहे हैं—देव के अन्य ग्रन्थों के अतिरिक्त नायिका भेद सम्बन्धी 'शृंगार विलासिनी, नाम का उनका एक और ग्रन्थ प्राप्त हुआ है। यह संस्कृत में लिखा गया है। ग्रन्थ में उनका निवासस्थान इष्टिकापुरी (इटावा) दिया गया है। यथा—

देवदत्त कविरिष्टिकापुरवासी स चकार।
ग्रन्थमिमं वंशीधर द्विजकुल धुरंवभार॥

इसके आगे के छप्पय में ग्रन्थ-निर्माण का काल इस प्रकार दिया है—'इससे प्रकट है कि उक्त ग्रन्थ देव ने दक्षिण कोंकण देश में जिसे वह विदेश कहते हैं और जो कृष्णावेणी नामक नदी के संगम पर स्थित है, संवत् १७५७ (१७०० ई०) के श्रावण की बहुला नवमी को सूर्योदय के समय पूर्ण किया था। वार और पक्ष स्पष्ट ज्ञात नहीं होते। उस दिन

1. हिन्दी साहित्य का अतीत—दूसरा भाग (शृंगार काल) लेखक—पंडित विश्वनाथ-प्रसाद मिश्र—(पृष्ठ ५२८)।

रेवती नक्षत्र और धृत योग था।[1] × × × ग्रन्थकार उस समय दिल्ली गद्दी पर मुगल-सम्राट औरंगजेब का अधिकार बताता है।[2]'

'शृंगार विलासिनी' को कवि देव की रचना न स्वीकारना नितान्त असंगत है। बहुमुखी प्रतिभा के धनी रचनाधर्मी के साथ ऐसा करना घोर अन्याय है। हमारी धारणा है कवि भ्रम दूर करने के ही लिए अपने प्रचलित नाम देव का प्रयोग इस ग्रन्थ में भी कर दिया—

अनुकूलो दक्षस्तथा धृष्ट: शठ नर एव।
भवति चतुर्धानायक: संवर्णय कवि देव ॥ ८६

इतना ही नहीं देव का एक हिन्दी ग्रन्थ है 'रस विलास'। इसमें कवि ने रस, उसके भाव-विभाव और नायिका-भेद विवेचन किया है। कई छन्द अधिकांशत एक से हैं—

सदैवैक नारी रत: सोऽनुकूल इत्येव।
दक्ष: सर्ववधूष्वथो, समप्रीतिकर एव[3] ॥ ८७

---

1. स्वर[7] भूत[5] स्वर[7] भूमि[1] मिते वत्सरे यदाऽयं,
दिल्लीपति नवरंगसाहि, रजयत्सुदुपायं।
दक्षिणदिशि च तदेव, कुंकुण नाम विदेशे,
कृष्णावेणी नाम नदी संगम प्रदेशे।
श्रावणे बहुल नवमी तिथौ, रेवती धृति युते,
कवि देवदत्त उदिते रवावगमपय दहनिस्तुते ॥

2. हिन्दी में रूपान्तरित—दौलतराम जुयाल सं २०२१, पृ० ३६

3. एक नारि अनुकूल अरु,
सकल नारि समदक्ष।
सापराध सठ सो छिप्यो,
उघर्यो धृष्ट समक्ष ॥
—रसविलास। ६६

इसी प्रकार एक छन्द और देखिए—

तस्य नर्म सचिवः सखा तद् भेदकत्रयी ह ।
पीठ मर्द नामा विटो, विदूषको भवती ह[1] ।।

—शृं० वि० । ६३

ग्रन्थकार ने नायिका-भेद निरूपण में नयी उद्‌भावना अथवा स्थापना करने का प्रयास नहीं किया है। परिशीलन से स्पष्ट है कि कवि भानुदत्त की रसमंजरी से पूर्णतः प्रभावित है। ग्रन्थ का वैशिष्ट्य इस अर्थ में सर्वथा स्वीकारना पड़ेगा कि कवि ने हिन्दी के मात्रिक छन्दों—दोहा, सोरठा छप्पय एवं सवैया का प्रयोग संस्कृत काव्य में प्रथमतः आज से तीनसौ वर्ष पूर्व किया। प्रवाहमयी भाषा में ये संस्कृत के सवैया साहित्य के रत्न हैं।

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र तथा अन्य विद्वानों ने देव के कतिपय संस्कृत के लघुकाय ग्रन्थों की चर्चा की है, उनके अतिरिक्त भी कवि का एक ग्रन्थ दतिया राजकीय पुस्तकालय में है। वह है 'अकबरअली-विलासः'। यह ग्रन्थ भी संस्कृत भाषा में है।

गंगा दशहरा
संवत् २०२६

—(डॉ) शिवशंकर त्रिपाठी

---

1. नर्म सचिव तिनको सखा,
ताहू त्रिविध बखान।
पीठ मर्द विट दूसरो,
और विदूषक जान ।।
—रसविलास ।७४

FOREWARD

Indian thinkers had very early realised prime importance of the sex-instinct in living being. They had devoted attention to understand and analyse this sentiment with a view to find out ways and means for its sublimation, so that this primitive instinct be so channelised that it may lead human beings towards the realisation of the highest bliss. Their studies led them to declare the erotic sentiment as a 'coborn of the highest beatitude' (brahmānand—sahodara), with the only distinction that while the blissful experience arising out of the satisfaction of the erotic-sentiment was momentary, the bliss of the union of the individual soul with the universal soul was everlasting. The joy of sexual-union, however transitory, it may be did providc hnman beings with a taste of how enjoyable the bliss of the union with the Supreme—Soul could be. It was in this mood that erotic scenes were depictcd in the plastic art of temples and literature, the erotic sentiment (Śṛṅgāra) was declared to be the supreme sentiment (rasa —rāja). Literary works like 'Geeta Govindam' of Sri Jaya Deva depicts the erotic sentiment in all its various aspects.

The mundane aspect of the erotic sentiment also recieved a detailed treatment at the hands of Indian thinkers and it gave rise to a branch of knowledge, called the 'kāma śāstra' i.e.

sexology. It is really pleasantly surprising that sexology was fairly developed even in the pre-christian centuries in India. Vātsyāyana's Kāma—Sūtra 'the standard text—book on sexology describes in detail the sexual behaviour of a civilised citizen (Nāgaraka). This work classifies men (Nāyaka) and women (Nāyikā from the point of view of sexual activities and provides detailed instructions how sex can be made to yield the highest type of physical joy in a cultural manner. The subject was further developed in works like Kokkaka's 'Rati-rahasyam', Kalyāṇamalla's 'Anaṅgraṅga' etc.

The erotic sentiment (Sṛngāra) had its due place in the Indian literature from the earliest times. It's depiction is not wanting in the Vedas, the Purāṇas, the Mahābhārata and the Rāmāyana of Vālmīki. But upto the time of the great Kālidāsa, it was treated in a balanced way, as being one of the nine main sentiments (rasas) though having high importance. Bhāvabhūti the greatest poet after Kālidāsa even went to the extent of declaring the pathetic sentimens (karuṇa-rasa) as the basis of all sentiments with the passage of time, however, the erotic sentiment by and by eclipsed all the other sentiments in Indian literature and poets vied with each other in depicting the various love—dalliances and categories of women from the point of view of sex (Nāyikā—bheda). This development as well reflected in the works on Dramaturgy (Nātya —Śāstra) and poetics (Kāvya–Śāstra), Bharata the earliest writer on Drama-

turgy had declared that whatever is bright, brilliant and pleasing to the eyes can be equalled to the erotic sentiment (Śuci Medhyamujjvalam daraśanīyam vā tacchṛṅgareṇopamīyate) and had contented himself by classifying the Nāyaka (man) and Nāyīkā (woman) in three categories—Uttama (best), Madhyama (middling) and Adhama (lowerly). The Nāyikā (woman) was held to be the source of joy and Bharata himself has categorised the feminine sex in twenty two classes (Nātya—Śastra—ch 20, 203-204). This Nāyikā-bheda (classification of womenfolk) was further elaborated by later writers on dramaturgy and poetics, so much so that Bhānudatta in his 'Rasamañjarī classifies the Nāyikās in three hundred and eighty-four types.

The lead given by the poets of Samskrit and Prakrita in making the erotic sentiment (Śṛngāra) as their sole concern and in depicting the moods and modes of various types of Nāyikās was fully emulated by the later poets of Braj-Bhāsaā Poet Deva Dutta (in short Deva) is one of the greatest amongst these poets of Braj·Bhāsā. His poetic works are well known to the stūdents of Hindi literature to need an introduction here. But what is little known about this great poet is that he was an erudite scholar of Samskṛit language and poetics and had also composed verses in Sanskrit. One of his poetic works is the Sṛngāra Vilāsinī' which though noticed very early by Dr. Pitāmber Datta Barthwala in his catalogue of Hindi Manuscripts publised by the Nāgari Prachāriṇi Sabha Kāshi remained unpublished so far, This work deserves attention very much

dueto the fact that Deva has started an innovation in Samskrit by composing verses in Hindi metres like the *Dohā, chhappaya, sawayyā* etc, Dr. Shiva Shankar Tripathi the editor of the present work, dererves commendations for bringing out this rare work of Sri Deva. It is hoped that students of Indian literature would heartily welcome this publication and thus afford eucouragement to Dr. Tripathi to search and bring out other Sanskirit works of poet Sri Deva and also other rare wotks lying in manuscripts in our various hibraries and archives

Sanskrit, Pali, Prakrita
and eastern languages.
University of Allahabad.

Dr. M. P. Lakhera
(Reader)

Introduction

Śuci medhyamujjavalam darśanīyam vā tacchṛṅgāreno-pamīyate.

—*Nātya Śāstra/IV*.

In the above karika sage Bharata made an affirmatory proclamation that, what-so-ever is sublime, heavenly and bright may be assimilated with the Erotic sentiment. Love is the first and foremost instinct of human kind as well as of the other living beings. When it heightens in relation to relevant causes and embraces the maturity of its psycho-physical status of relishment it is called Erotic. This erotic probably comes out of an action, as in Bhāva Prakāshanam it is mentioned—'bāhyārthālambanavato manaso rajasi sthitāt Śāhaṅkārādvikāro yaḥ sa Śṛngārah (11/12). Reknowned world classic the Kāmasūtra, may be accepted as a great manual on the techniques of love as well as describing the mechanisms of sex and also the physical endowments of women. It contains a lot of picturesque depictions of luxurious and lustful citizen-life. We may very easily imagine how pleasurable was the living of town and cities at that time when Vātsyāyana wrote this valuable treatise. That was the period, when pleasure or lust was regarded as a holy act without guilt among the ancients, everywhere as a part of life. So Sṛṅgāra had been

regarded as the dominating one out of Nine Rasas by the school of Indian aesthetics. The concept of love that finds its maturity into the cognizable status of the erotic sentiments is a prominent factor of the poetics. It is not surprising, therefore, that a term Śālabhanjikā came into existence in Indian art and sculpture, which meant the Nāyika or a charming beauty figuring prominently in the Sanskrit drama and kāvya. Love can never attain its complete maturity, if it is not conditioned by sexual relation. Sage Bharata in Nātya Sāstra has said, 'ṣtripunsayostu saṅlāpo yastu kāṁsamudbhavaḥ. tajgyeyam sukumāram hi Śṛṅgāra rasa sambhavam.' Thus the luxurious and lustful society caused such circumstances that the rhetoricians of aesthetic school were inspired of the pleasurable idea and began dealing with Nāyaka-Nāyikā in their treatises of dramaturgy and poetics.

During the period when Kāmasūtra of Vātsyāyan flourished there was a wave of luxurious-lustful living in society so widespread that no writer of any branch of literature dared to scape himself uninfluenced. This was the cause which gave birth to several treatises on Nāyikā-Bheda, though the subject has had occupied its place in other central works of Dramaturgy and Poetics. Though not defined elaborately but in 'kāmasūtra' of Vātsyāyan, Ratirahasya of Kokkaka and Anaṅgarang of Kalyāṇamalla Nāyikās are mentioned and classified according to their

nature as well as their acts, activities and duties towards the Nāyak. Vātsyāyan mentions three categories of Nāyikā-—'Nāyikāstisraḥ, kanyā, punarbhū veshyā cha (kāmasūtra /1-54) kanyā, punarbhū and veshyā. Again each are subdivided into two categories as Puṭraphaladā kanya, Sukhaphaladā kanyā, Upabhuktā Punarbhū, Anupabhuktā Punarbhū, Rūpajīvā Veshyā and Gaṇikā Veshyā. In Ratirahasya the Nayika is taken to some extent broadly in fourfold aspects according to the temper—'Padminīm tadanu citriṇīm tataḥ śaṅkhinīm tadanu hastinīm viduḥ' Padmini, Citrinī, Śaṇkhinī and Hastinī are mentioned by name.

(A) Nātya Śāstra

The central-work on Dramaturgy, Nāyṭa śāstra of sage Bharata which fed all the later writers on the topic thoroughly dealt with Nāyaka-Nāyikā. for the first time.—'Strīṇā ma ca puruśāṇām ca uttamādhama madhyamā (24–1). Here he says about the threefold characteristic—temaperaments of the *human beings*, i. e. Uttama (the best), Madhyama (the middling) and Adhama (the mean or lowest). In the same way he categorises the Nāyikā too. as Uttamā (the best)—one who never utters harshwords to her lover (Nāyaka) even on his mishehaviour, does not disclose the secrets and his misconducts. and if falls in anger it is only for a moment, is called Uttamā. Madhaymā (the middling)—Unmalcious-natured, easily angered and easily pleased, of humble submission is called Madhyamā, Adhamā

(the mean or the lowest) -one, who becomes angry or unpleased without cause, remains in adverse-mood for a long period and behaves adversely in love affairs is, called Adhamā. Further he proclaiming the women as the only root or base or source of wordly happiness and every kind of pleasure (Sukhasya he striyo mūlam) has divided the Nāyikā in twenty two kinds.

Devatāsuragandharvaraksho nāgapatatriṇām. Piśācariksha vyālānām naravānarahastinām, Mṛgimeenoṣtramakarakharasūkar vājinām, Mahiśajaga vādinām tulyaśeelaḥ stṛyaḥ smṛtah.

—Nāṭya Śāstra (22, 95-96)

Here sage Bharata classifies Nāyikās according to the characteristie nature and behaviour—temperaments of the worldly beings i.e. Devatā, Asura, Gaṇdharva, Rākshas, Piśāca, yakśha Vyaghra (Riksha). Vyāla (surpa), Nara; Vānara, Hasti, Mṛga, Meena, Uśtra,(camle), Makara, (khartass), Śūkara, Vāji. Mahisha, Aja, Gava. Again he has arranged according to eightfold diversty in their conditicn as Vāsakasajjā, Virahotkaṇthitā, Swādhinapatikā, Kalahāntaritta. Khandita, Vipralabhhā, Proshitabhartṛkā and Abhisārikā. (N. S. /20/203-204).,

Dasa Rūpaka

Latter on after Nātya Sastra it is Dhananjaya who in his Daśarūpaka, an admired and recognised treatise on dramatic art, dealt with the topic or Nāyikā. Hs also followea the path

directed by sage Bharata in his treatise as a central work on dramaturgy but differs in classification. because his base is Nīyaka (the hero). 'Swānyā sādhāra ṇastṛi tadaguṇā nāyikā tṛdha' (Prakash 2/15)—(Sviyā) Parstṛ (Parkīyā) and Sādhā-raṇstṛ (Sāmānyā) are according to the nature, temper and (ability) of the hero (Nāyaka). He mentions Sviyā of three categories—Mugdhā, Madhyā and Pragalbhā. Again he subdivides seeh in three categories as dhirmadhyā, Adhira-madhyā, dhirādhiramadhyā, dhirapragalbhā, adhirapra-galbha, dhīradhīrapragalbhā, and then 'Dwedhā Jyesthā Kanisthā, cetyam ugdhā dwadaśoditah' (2—20), Amugdhā (the madhyā and Pragalbhā) is of two classes· Thu they are twelve in all. Mugdhā is not classified in this treatise. Again 'Āsāmaśtava vasthah syuh swadhīnap atikādikadikah— (2/23). He states of their eightfold conditions or situations in relation to the lover (Nāyaka)—Swādhinapatikā, Vāsaka-sajjā, Virahotkanthitā, Khanditā, Kalahāntaritā, Vipralabdhā, Prośitapriyā, abhisāriketyaśtan swastṛprabhṛtināmavasthaḥ'. Dhananjaya explains the eight situations of the heroine as—Svādhina-Patika, Vāsakasajjā, Virahotkanthitā, Khanditā, Kalahāntarita Vipralabdha, Prośitaprīyā and Abhisārikā. Here he has followed sage Bharata as he has had classified in his Nātya Śāstra.

Bhāva Prakāśanam.

The work written by Śāradātanaya consists of ten adhikārās namely—first and second deal with Bhāva 3. Avāṇ-

tarbhāvabheda Swarūpa 4. Sṛṅgārālambananāyakādi-Swarūpa 5. Nāyaka—bhedāvastha—rasa—bhāva—Vikāra 6. Śabdārtha—sambandha—bheda—Prakara 7. Nātyetivṛttādi-lakṣaṇa 8. .Daśa rūpak—lakṣaṇa 9. Nṛtyabheda—swa-rūpa—lakṣaṇa 10. Nāṭya—Prayoga—bheda—Prakāra. As regards the subject matter of Nāyikā bheda, he has adopted the principle and method both of Nātyaśāstra i.e. Deva-śeelā, Daityaśeela, Gandharvaśeelā, Yakshāṅgnā, Rākshasa seela, Piśacaśeelā, Nāgaśeela, Marṭyaśeela etc., are exam-plified, with classification and definition He also adds some-thing new to the subject mentioning four types of Nāyikās according to their nature and activities as udāttā, uddhatā, śāntā and Lalitā. He has accepted only three categories according to condition in relation to Nāyaka i.e. Vipralabdhā, Virahotkaṇthitā and Abhisārika. Lastly he delights in arran-ging into divisions and subdivisions upto the number of three hundred and eighty four viz 13 (swīyā)+2 (Parkīyā)+1 (śāmānyā), sixteen in number. Again the eight fold classi-fications accordingly with the dramatic characteristics—Vāsa kasajjā etc. Now the calculation reaches to one hundred and and twenty eight in number. Further he subdivides each in three types as—Uttamā, Madhyamā and Adhamā.

Rasāṛṇava Sudhākaram—

The work is mainly based on Śṛngāra Prakaśa of Bhoja, consists of three vilāsās, comprehends with profuse illus-trations practically all the subject matters conected with

Dramatic art. The topic Nāyaka and Nāyikā is dealt here in vilāsa first along with other topics as Nātya—lakṣaṇa and Rasa—lakṣaṇa, qualities and classification of the Nāyaka, incidental treatment of three Rītis, four dramatic vṛttis, Pravṛttis and sāttvika Bhāvas. The dominance of erotic relishment inescapably influenced Śinga Bhūpāl and so he establishing some elaborate expositions of Sṛṅgāra Rasa says—'Ādhāraviśayatvābhyām nāyako nāyika pi ca, Ālambanaṁ matam tatra nāyako guṇavān bhaveta' and he bases his interpretation of Nāyikā's classification on Śṛngāra rasa with reference to Vibhāvanā. He accepted Sviyā of three types as categorised by other predecessor rhetoricians i.e. Mugdhā, Madhyā and Praudhā, but gave his new theory of Mugdhās' categorization in sixfold—Vayomugdhā, Navakāmā, Ratauvāmā, Mṛdukopā, Salajjaratiśīlā, Krodhenā pabhaśamāṇā rudatī, Madhyā in three fold Samalajjāmadanā, Prodyattāruṇya sālinī and Mohāntsuratā; again accordingly with rank and position he depicts three subdivisions—Dhīrā Adhīrā and Dheerādheerā. Lastly he subdivided Pragalbhā Parakeeyā, and sāmānyā in two kinds each i.e. Sampūrṇa-yauvanonmattā and Praūdhamaṅmathā, Anūdhā and Parodhā, Raktā and Viraktā respectively. Concludingly he recognises the eight fold classification i.e. Prośitabhartṛkā etc. and also the Uttamā, Madhyamā and Adhamā.

(B) *Kāvya Śāstra*—

We have seen in Nātya Śāstra that sage Bharata has stated three types of women and four parts of their youth—

'Sarvāsāmapi nārīṇām Youvanlābhā bhavanti catvāraḥ. Nepathye rūpaveśairguṇaistu sṛṅgāramādyā (23-40). So Mugdhā, Madhyā and Praudhā, the three kinds of Nāyikā are accepted. Rhetoricians as a matter of fact, in interpretation and classification of Nāyikā have adopted the method and principle decided by sage Bharata. Agnipurāṇa and Sṛngāratilaka have dealt the topic under Ālambanavibhāva—'Svakīyā parakīyā ca punarabhūriti kausikah. sāmānyā na punarbhūrityādyah bahubhedataḥ. (Agnipurāṇ/ 339-41) In some treatises Ātmīyā. Parkīyā and Sarvāṅgnā, these three types are mentioned. Rudrata in his kavyālankāra has accepted Sṛṅgārarasa as the only base of interpreting the Nāyikā and their classifications.

Bhojadeva—S.kanthabhar aṇa and Sṛṇgāraprakāśa.

Bollowiñg the path directed by sage Bharata and confirming the ideology, Bhoja has elaborately discussed the subject matter related to difinition and classification of Nāyikā in his Sṛṅgāraprakāśa. In Kāma Sāstra for the first time Punarbhū nāyikā obtained its place categorically. Later on it was Agnipurāṇa which mentioned and again in Sṛṇgārprakaśā, Bhojadeva accepted as one of the Nāyikās. The same in Sarasvatīkanthābharaṇa occupied a deserving place.

Guṇato nāyikā pi syāduttamā madhyamādhamā; Mugdhā, madhyā pragalbhā ca vayasā kauśalena va. Dhīrā

dhīrā ca dhairyeṇa svānyādīyā—parigrahāt, ūdhānūdhopayamanāt kramājjyeṣṭha kanīyasī, Mānardheruddhatodattā Śānta ca lalita ca sā Śāmānyā ca punarbhūśca svairīṇī ceti Vṛtitah, Ājivatastu gaṇikā rūpājīva Vilāsinī, Avasthāto aparācāstau vigyeyāh khandi tādayaḥ. —(S.K./5/110—113)

In Śṛṅgāraprakāśa Nāyikābhed has been taken more broadly and keenly but he did not mention 'Adhamā and Jyeśthā. Here Svīyā and Parkīyā both are subdivided into 1. Uttamā 2. Madḥyamā 3, Kaniṣthā 4. ūdhā 5. Anūdhā 6. Dhīrā 7. Adhīra 8. Mugdhā 9. Madḥyā and 10. Pragalbhā separately. Bhoja did not accept 'Dhīradhīrā as a subdivision of Madhyā aud Prāgalbhā and also did not mention the name Jyeṣthā but Pūrvānūdhā instead of the same. He subdivided 'Punarbhū'[1] again into four and Sāmanyā into five as—1. Akshatā 2. Kshatā 3. Yātāyātā 4, Yāyāvarā and 1. ūdha 2. Anūdhā 3. Swayṁbarā 4. Swairiṅī 5. Veśyā respectively. The subdivision of 'Śāmānya' nāyikā introduced here in Śṛngāraprakāśa may be acknowledged as one of the unparalleled in whole Indian Poetics. After Bhoja it is kriśṇakavi who in his Maṇdāramaranda campū adopted this subdivision.[2]

1, Punarbhūakshatā akshatā yatāyatā yāyāvarā'ca (Ś.P./P, 15)

2. Akṣhatāca kshatā yātāyā tāyāyāvaretyapi Punaścaturdhā kathitāh Pūrvaibhojāadibhirabudhaih yātāyātā tu yugapadūdhānekaistu bhartṛbhih yathā Pandusutairūḍhā drupadasya Kumārikā.

Hemachandra—Kāryānuśasana

Here we find a bit about Nāyikā and Nāyikā bheda in Kāvyānuśasana-Madhyā Mugdhā and Pragalbha are subdivided into two divisions separately according to Vaya(age) and Kauśal (skill)—Vayasā Mugdhā. Kauśalen Mugdhā, vaysā madhyā, Kauśalen madhyā, and in the same way vayasā Pragalbhā, kauśalen pragalbhā. He accepted also the subdivrisions like Dhīrā and adhīrā as interpreted by former rhetoricians as well aś Pūrvamūdha jyeṣthā. Paścādūdhā-Kanistha nāyikās depicted in Bhrata's N. Ś. Hemachandra recogniśed only three divisions of parkīyā as Virhotkanthitā, abhisārikā and Vipralabdhā.

There are some other treatises also in which we may find a brief description of the topic alongwith the above mentioned woıks Viz—Vagbhatālamkār and prataparudrayaśobhūśaṇa, but notso noteworthy. Vāgbhatta mentioned only four nāyikas—Anūdhā, Svakīyā. parakiyā, and Parāṇganā(may be acknowledged as Sāmāñyā),

Āchārya Viśwanātha—Sahityadarapaṇa

In Sahityadarapaṇa Āchārya Viśwanātha accepting the interpreted difinition and main classifications by former rhetoricians has done somthing new in establishing subdivisions. It may be our affirmative statement to hold his subdivisions of Madhyā and Pragalbhā to be quite new. He says Mugdhyā

and Pragalbhā of five types (both mugdhā, madhyā respectively) and the later of six kinds simultaneously as Mugdhā—1. Prathmāvatīrṇamadanavikārā 1. Prathamāvatirṇayauvnā 3. Ratauvāmā 4. Mānemṛdu 5. Samadhikalajjāvatī. Madhyā—1. Victitrasurata 2. Prarūdhayauvanā 3. prarūdhtāruṇyā 4. Iṣatpragalbhavacanā 5. Maḍhyamavṛditā. Pragalabhā 1-Samarāndhā 2. Gādhatāruṇyā 3. Samastaratakovidā 4. Bhāvonmatta 5. Svalpavṛda and 6. Ākrāntanayakā. He has mentioned the subdivisions dhīrā,adhīrā and dhīrādhīrā of Madhya and Pragalbha alongwith the 'recognition of Jyesthā and Kaniṣthā, as well as Svadhinabhartrika etc eightfold divisions. three subdivisions of Parakīyā—Virahotkanthita. Abhisarikā Vasakasajja[1] are mentioned as our former—rhetoricians have had done.

Bhānudutta—Rasamanjarī

As a matter of fact the Rasamanjarī is a smaller work which deals specially with illustrations the topics of Nāyaka Nayikā their adjūncts, as well as the excallencies, Apart from it the work also consists of a good dealing with two varieties—Samyoga, and Viyoga or vipralambha of Sṛngāra, the later

1. Tryavasthaiva parstṛsyāta prathamam viraho nmanā tato bhisārikā bhutvābhisaranti vrajet swayam, Sanketācca peribhraṣtā Vip pralabdhā bhavet punah Parādhināpatitven nānyāvasthātrasangatā.

(S.D./1-160)

is elaborately dealt here with its ten stages, This is the only treatise which deals with Nāyak Nāyikā their qualities, difinitions and classifications separately based on the subject matter instead of Śṛṅgārarasa. Thus the work has its own importance.

Bhānudatta in his Rasamanjarī having follwed the main classification of Nāyika and the theory, established by our former rhetoricians as Svīyāi, Parkiyā and their three divisions—Mugdhā, Madhyā and Pragalbhā. has done something noteworthy in subdividing Mugdhā, with a new anglé. He subdivided into four 1. Agyāta-yauvanā. 2. gyāta-yauvanā 3. navodhā 4. viśrabdha-navodha, In the same way he has given a new interpretation of Madhyā and Pragalbha too as—1. Samānalajja-madanetyabhihitā 2. Ativiśrabdhanavodha (Madhyā) and 1. Ratipṛtimatī 2.Anandasammohitā (Pragalbhā) He along with it has also accepted the subdīvisions like Dhīrā, Adhirā dhirahīra of Madhya and Pragalbhā. Jheṣtha and Kaniṣtha Nayikas are too mentioned here, Accepting the two-fold Parakīya 1. Parodhā 2. Kanyakā Bhanudattā subdivirded into 1. Guptā 2. Vidagdhā 3. Lakshita 4. Kulata 5. Anuśayānā 6. Muditā. Again he took First, Second and Fifth to subdivide into 1. Suratagopana 2. Vṛttasuratagopana 3. vartiśyamaṇa suratagopaanā (Gupta), Vāgvidagdhā 2. Kṛyā vidagdhā (Vidagdhā), 1. Vartamānasthānavighatnanādanuśayānā 2. Bhāvisthanabhava sankaya anusayana and 3. Swānadhisthānasanketasthalampratibharturagamanānumānādanuśayānā (Anuśayānā),

Lastly we see in Rasamanjarī the author has given again an entirely new theory for subdivision of nāyikās Viz. 1 Anyasaṃbhogadukhitā 2. Vakroktigarvitā (a. Premgarvitā b. Saundaryagarvitā) 3. Mānavati (a. Lagumānavati b. Madhyamānavatī c. gurumānavatī). Thus 13 (svīyā) + 2 (parakīyā) + 1. (Sāmānyā) = 16 again their eight fold subdivisions (Virahotkaṅthitā etc.) 16 × 8 = 128 again each of three kinds-Uttamā and Adhamā, which resulted to reckon the numbers of nāyikās—128 × 3 = 384. Not only this, he went ahead to classify into Divyā, Adivyā and Divyādivyā each, then It leads us to recount upto one thousand one hundred and fifty two in all.

Akabār Saha—Sṛṅgāramanjarī

The work is based on Bhānudatta's Rasa-manjarī' and devotes itself mainly to the theme of Nāyaka-Nāyikā and their companions, topically dealing with Śṛṅgārarasa'. 'Śṛgāramanjarī' has its own place among the works dealing wiḥh the theme Nāyaka-Nāyikā and the Rasa 'Śṛṅgāra which occupies an honoured place. because of several new interpretations in relation to the classification of Nāyikā.

Here in this work Parakīyā is decribed firstly of two types—Aṇyā and Parodhā then is subdivided into 1. Uḍbudhā (svayamanurāginī) 2. Uḍbodhitā (Nāyakapreritā) and dhīrā, adhīrā, dhīrādhīra, three divisions of the second. Again uḍbudhā is subdivided into Guptā, Nipuṇā and Lakshitā, out of three the two Nipuṇā and Lakshitā are again subdivided as 1. Vāgnipuṇā 2. Kriyānipuṇā 3. Pativaṇcananipuṇā (Nipuṇā), 1. Pracchannalakshitā 2. Pra-

kaśalakshitā (Lakshita) and the second into 1. Kulatā 2. Muditā 3. Anuśayānā 4. Sāhasikā. Notably it is to say that, Pativaṇcananipuṇā and Sāhasika both are entirely new. In the same way Śṛngāramanjarīkār has divided Sāmāṇyā into 1. Svataṇtrā 2. Janaṇyādhīnā 3. Niyamitā 4. Klṛptānurāgā 5. Kalpitanurāgā.

Akbarsāha, along with his other new imaginātions of Nāyikābheda differs from Bhanudatta's theory in several places, as for instance he took 'Anyasammbhogadukhitā and Mānavatī with reference to 'Khanditā and adds one Vakroktigarvitā' among eight nāyikās. Svādhīnapatikā is here depicted as—Svīyā—Mugdhā Madhyā—Pragalbhā—Parakīyā—Sāmānyā—Dūtīvaṇcikā and Bhāvaśaṇkitā. The work records 'Avasitapṛvāsapatikā' instead of 'Proṣitapatika', divided Virahoṭkanthita into 1. Kāṛyavilambsuratā 2. Anuṭpannasambhogā and again the later into 1. Darśananutāpitā 2, Śṛvaṇānutāpitā, 3. Citrānutāpita, 4. Svapnanutāpitā. Vipralabdhā is here said to be of two kinds 1. Nāyakavaṇcitā 2. Sakhivancitā and in the same way the 'Khaṇditā' is subdivided into 1. Dhīrā 2. Adhīrā 3. Dhīradhīra 4. Mānavati 5. Aṇyasambhogadukhitā and 6. Iṛṣyāgarvita. Proṣitapatikā' and 'Parakīyabhisārikā two are subdivided into 1. Prositapatikā 2. Pṛvasatpatikā 3. Pṛvasyaṭpatikā 4. Sakhyanutāpita and 1. Jyotsnābhisārikā 2. Tamobhisārikā 3. Divābhisārikā 4. Garvābhisārikā 5. Kāmābhisārikā, respectively Interpretation of nāyikās, their qualities and the classification is

dealt here in such a notable way and elaborately that none can surpass and go ahead of Sṛngāramanjarī.

The subject Nāyikābheda is dealt in other works also viz Sṛngārāmṛtalaharī, Rasaratnahār, Rasacandṛkā, Saduktikarṇāmṛtam Sārangdharpaddhati, Padyaracanā and the Rasikajeevanam.[1] Gaudīyavaiṣṇava tradition has also dealt with the topic. In 'Alamkarkaustubh' of Kavikarṇapoor Nāyikās are reckoned 1908 in number.

Kavi Devadatta—

Kavi Devadatta or Deva has occupied an honoured place among the erotic Hindi poets. 'A brief description of Hindi Manuscripts' published by Nāgarī Pracāriṇī Sabhā Kaśī records the following about Kavi Deva—'Deva Kavi—Vāṣtavika Devadutta samvat 1730. Ghosariā (ETĀWĀ), Samengaon (Mainpuri) nivāsī. Fafūnd (Etawā) Kuśalasimha ke Āśṛta' Sheosimha Saroja has mentioned seventy two books written by him, but Dr. Nagendra accepted only twenty nine books. 'Sṛngāravilāsinī' is one of them. Available works are as—1. Bhāvavilāsa 2. Rasavilāsa 3. Bhavānīvilāsa 4. Kusalavilāsa 5. Jātivilāsa 6. Vṛkshavilāsa 7. Pāvasavilāsa 8. Rādhikāvilāsa 9. Sujanvinoda 10. Sumitrāvinoda 11. Vairāgyasataka (Jagaddarśan—Pacīsī. Ātmadarśanpacīsī, Tatvdarśanapacīsee, Prempacīsee) or 12, Devasataka

1. Printed by Sampurnanand Samskrit Vishvavidyalaya in Laghugranthamala series No. 27 (Samvat 2034) Author—Rāmānand Tripathi, Editor—Karunāpati Tripathi,

13. Nītisataka, 14. Premataranga, 15. Sukhasāgarataranga, 16. Rasānand Laharī 17. Rāgaratnākar 18. Premachandrikā 19. Premadīpikā 20. Premdarśana 21. Aṣṭayāma 22. Sundarīsindūra 23. Devacaritra 24. Devamāyāprapanca (drama) 25. Nakhasikha. 'Śṛṅgāravilāsinī' is mentioned among the Saṁskrita unpublished works.[1] It shows him to be an allsided man of meritorious talent.

Śṛngāravilāsinī—

Kavi Deva was of course exceedingly possessed of finest taste for literature, poetics, rhetorics, music and also fine arts, which shone with greatest radiance in the erotic poetry of Hindi literature. 'Śṛṅgāravilāsinī is composed in ṣamskrit language which raises a point about its authorship, but now it stands no more. Dr. P. D. Barathwal's statement helps us to recognise the work composed by Deva[2]—'Among the several works of Deva a work Śṛṅgāravilasinī having its theme Nāyikābheda has been found. It is composed in samskrit. In the work his residence is recorded Iṣtikāpur. (Etawah)—

Deva Dutta kaviriṣtikāpurvāsī sa cakār granthamimam vanśidhar dwijkula dhurambabhār. Further in a chhappyaye the date of work is also indicated—It indicates that the work was composed by Deva in samvat 1757 (1700 A D) on

1. Hindi Sāhitya kā Ateeta—Doosarābhāga (Śṛngāra Kala) by—Viśwanāth Prasad Misra.

2. Hastalikhitā hindi granthon kā caudahavān vivaraṇa Nāgari Pracariṇī sabhā, kaśi,

Srāvaṇa Bahula Navamī in the morning, in Dakshin Konkaṇa country at the conflucnce of river named Kṛśṇāveṇī. The day etc. are not clear. At the occasioṇ it was Rewatī nakshṭra and Dhṛtiyoga.[1] × × × kavi mentions Aurangajeb the mughal emperor on the throneof Delhi, when be composed the work.[2]

Śṛṅgāravilāsinī is the work composed by Deva, where the author himself has given us a strong point including name Deva in a Dohā to decide the authorship—

Anukūlo dakshạṣtathā dhrṣthaḥ śaṭha nara eva, Bhavati caturdhā nāyakaḥ samvarṇaya kavi Deva —S. V.86

Apart from this we may trace several similar verses in author's Hindi Work Rasavilāsa, as—

Sadaivaika nārīrataḥ so nukūl etyeva, Daksah saṛva-vadhūṣvātho samprītikara eva S. V. 87

× × × ×

1. Svarabūta svarabhūmi mite vaṭsare yadā yam, Dillipati-navārangasāhi rajayatsu dirpāyam, Dakshindisi ca tadeva Kuṅkuṇan: ma videśe, Krsṇāveṅī nāma nadī sangam pradeśe Śrāvaṅabahulā navami tithau rewati dhṛti yute, kavi Devadatta udite ravi,vagamapayadahanistute.

2. Hindi men rūpāntarita—Daulatrāma Juyal samvat 2021/ page 39.

3. Eka nāri anukūla aru, sakala nāri samadaksha, sāparādha satha so chipyo, ughṛyo dhṛṣtha samaksha.

—Rasavilasa, 69.

Tasya narmasacivaḥ sakhā tad bhedakatryī ha, Peethamarda nāma vito vidūṣako bhavatī ha S. V./93

Śṛṇgāravilāsinī is completely based on Bhānudutta's Śṛṅgāramṛnjarī as regards the theme Nāyikābheda, their, qualities and classifications. We can never trace any new theory or interpretation. The work is admirably of great importance and rhetorical value because of its own quality i.e. the use of Hindi metres Dohā, sorathā, sawyyyā and chhappaya in samskrit language for the first time very skilfully three hundred years ago.

Some smaller samskrit works by Deva had been mentioned by Āchārya Viśvanāth Prasad Misra and others in their critical works, but only one more work has come to our knowing entitled 'Akbaralīvilāśaḥ' in Datia Rājkīya Pustakalaya.

Gaṅga Daśaharā —(Dr.) Shiva Shanker Tripathi.
samvat 2039

---

1. Narmasaciva tinako sakhī Tahū trividha bakhān, Peethamarda viṭa dūsaro aur Vidūṣaka Jān Rasavilāsa/74

Śṛṅgāra Vilāsinī

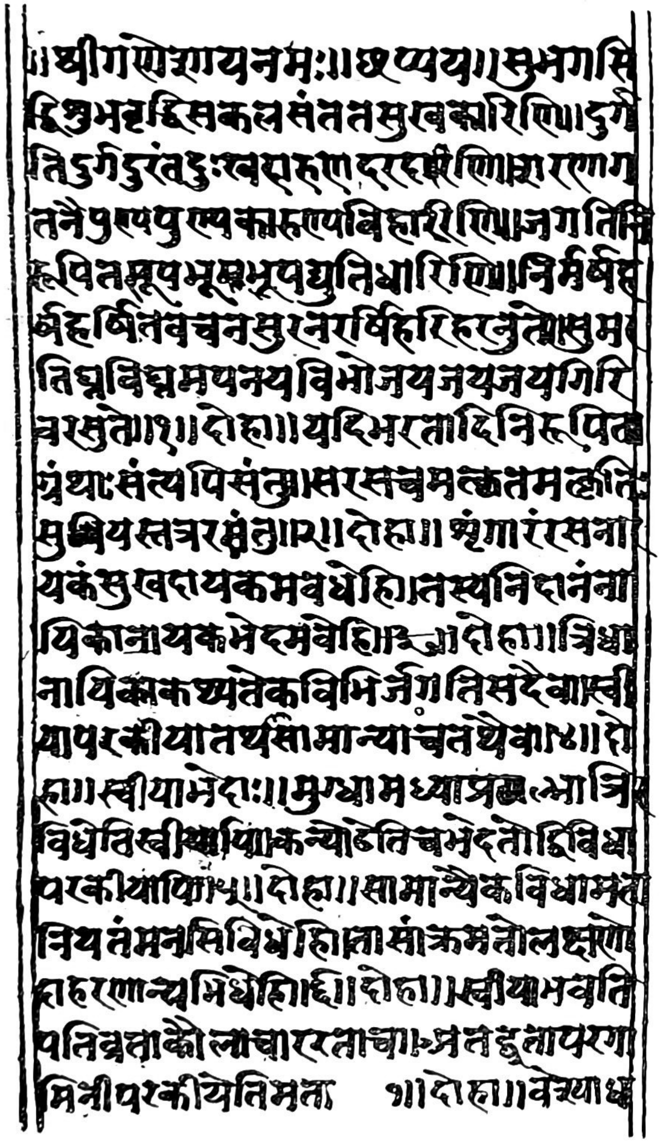

First folio

Śṛṅgāra Vilāsinī

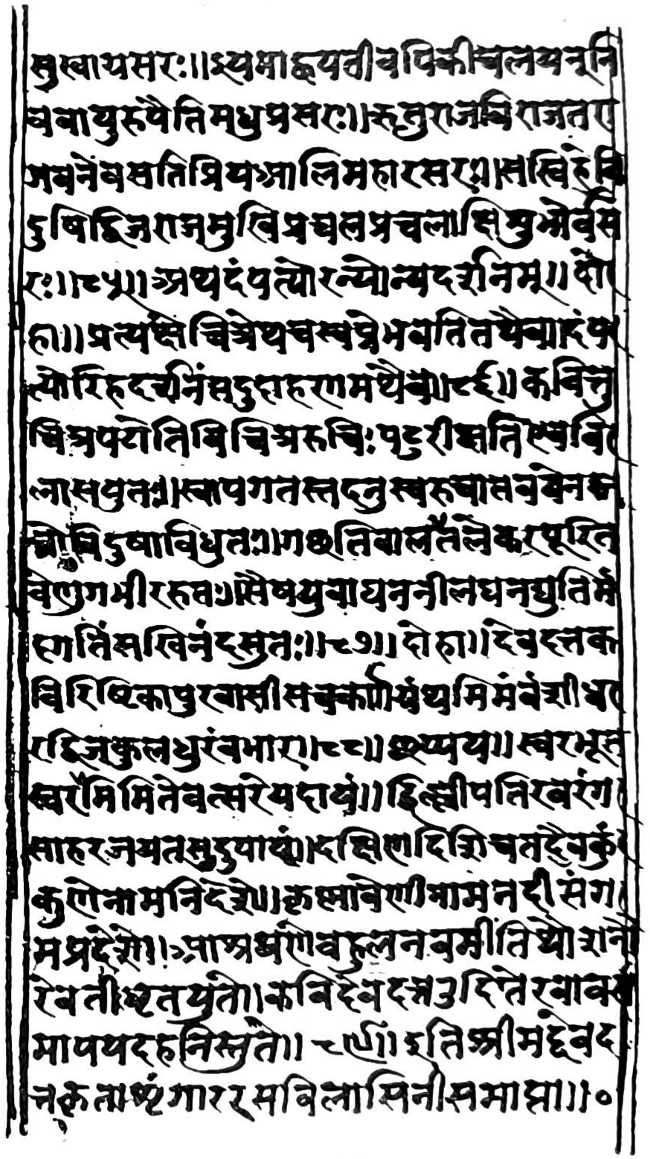

Last folio

शृङ्गार विलासिनी

मङ्गलाचरणम्

[1]

Chhappaya

सुभगसिद्धि शुभ वृद्धि सकल सन्तत सुखकारिणि !
दुर्गतिदुर्गदुरन्त दुःख दारुण दरदारिणि !
शरणागतनैपुण्य पुण्य कारुण्य विहारिणि !
जगद[1] निरूपित रूप भूप भूपद्युति हारिणि[2] !
निमर्ष हर्ष हर्षित वचन सुरनरर्षि हरिहरनुते !
सुमतिघ्न विघ्नमपनय विभो ! जय जय गिरिवरसुते !!

[2]

Dohā

रसिकमुदे सविलासजन, मनः परानन्दाय ।
शुभ 'श्रृङ्गार विलासिनी', क्रियते सुकविहिताय ।।

---

1. जगतनिरूपित ।

2. धारिणि ।

] 3]

यदि भरतादि निरूपिता, ग्रन्थास्सन्त्यपि सन्तु ।
सरस चमत्कृति मत्कृति स्सुधियस्तत्र रसन्तु ।।[1]

[4]

श्रृङ्गारं रसनायकं, सुखदायकमवधेहि ।
तस्य निदानं नायिका नायक भेदमवेहि ।।

[5]

त्रिधा नायिका कथ्यते, कविभिर्जगति सदैव ।
स्वोया परकीया तथा, सामान्या च तथैव ।।

[6]

अथ स्वीया—

मुग्धा मध्या प्रगल्भा, त्रिविधेति स्वीयाऽपि ।
कन्योढेति च भेदतः, द्विविधा परकीयाऽपि ।।

[7]

सामान्यैक विधा मता, नियतं मनसि विधेहि[2] ।
तासां क्रमतो लक्षणोदाहरणान्यभिधेहि[3] ।।

---

1. रमन्तु ।
2. मनस विधेहि ।
3. देहि ।

Mugdhā

[8]

स्वीया भवति पतिव्रता, कौलाचार रता च।
अतद्व्रता परगामिणो[1], परिकीयेति मता च॥

[9]

वेश्या धनमिच्छति परं, भवतु पुमानिह कोऽपि।
यया कदाऽपि न गण्यते चतुरोऽ[2] चतुरोऽपि॥

अथ स्वीया यथा—

[10]

Sawaiyā

शोभित शील कुलाचरणाचल साधु तया न तया सममन्या,
कोमल वागति मन्दतरागति रालपित स्मित साधु शरण्या,
नाथ ! कथं कथयामि तयस्तव यस्य गृहेऽस्ति पतिव्रत गण्या,
योषिदियं परमा परमावधि पुण्यलता धरणातल धन्या॥

मुग्धालक्षणम्—

[11]

Dohā

यौवनस्य किल शैशवे, लक्षणानि विलसन्ति।
यस्या वपुषि च तां वुधा, मुग्धामिह कथयन्ति॥

---

1. परगामिनी।
2. चतुरो वाऽऽचतुरोऽपि।

मुग्धोदाहरणम्—

[12]

Sawaiyā

ममैव किमु भ्रमतो नयने भवतीमिह पश्यत एव सदाऽपि,
तवालि तनौ किमपि प्रतिभाति दिन द्वयतोऽन्यदशेव तदाऽपि,
दृशश्चलता न वचश्चलता गमने ललिता चलितासि पदाऽपि,
तथाऽपि विलक्षण सच्छविस्त्व[1] सखि ! स्फुरति त्वयि काऽपि कदाऽपि ।।

अथ मुग्धाभेदाः—

[13]

Dohā

मुग्धा तदनु च नववधू, नवयौवन भूषा च ।
स नवानंगरहस्यका, पुनरपि सा कथिता च ।।

[14]

तथा च लज्जा प्रायरति रिति कवयः[2] कथयन्ति ।
मुग्धायाः एवं विधा, भेदाः पञ्च भवन्ति ।।

अथ नववधूदाहरणम्—

[15]

Sawaiyā

संप्रति कस्य मनो हरतीह न मोहयतीव न पश्यति या कम्,
सा समवेत्य समागत यौवनमालि[3] तदैव जयिष्यति नाकम्,

---

1. स्वच्छ वपुः ।
2. रिति कविनः ।
3. यौवन मत्ततदैव नमष्यति ।

क्रीडति काऽपि सरोजमुखी नवगोपसुता सखिभिः सखि साकम्,
कस्य चिदेतदहो कृतिनः खलु पुण्यमुपैति पर परिपाकम ॥

अथ नवयौवन भूषितोदाहरणम्—

[16]

Sawaiya

तथा[1] लभते न सुखेन समं यदनन्तयुगं यदि कोऽपि तपस्यति,
तदेव तवालि तनावधुनाऽनुदिनं क्रमतः सखि पश्य विनश्यति,
सहेत[2] स दुःखमये ननु यः कृततत्सदनं मदनं न नमस्यति,
रहस्यमवेत्य रहस्यवलेति विहस्य विहस्य नमस्यति पश्यति ॥

अथ नवाङ्गरहस्योदाहरणम्—

[17]

Sawaiya

रन्तु मने कवचः कपटै रभिसारितयाऽनुचरीभिरवश्यम्,
केलिकलाकुशलं त्वनुमाय[3] वने नव मालिन मालि नमस्यम्,
कण्टक कम्प भयाऽऽकुल या यदि गम्यत आनमिताननशस्यम्,
तर्ह्यपि पश्य सपद्यनया[4] प्रकटीकृतमद्य मनोजरहस्यम् ॥

1. तथापि न तिष्ठति ।
2. हंत सुखस्य समे तु वयः ।
3. त्वनमय ।
4. तथापि पस्यसि पद्यनया ।

अथ लज्जाप्राय रत्युदाहरणम्—

[18]

Sawaiyā

कुञ्चित[1] चाह चलन्नयना शयनालय लोलदृगञ्चल रोपम्,
चन्द्रमुखी विमुखी परिरम्भकृत प्रियपाणि समागमलोपम्,
तेन समं स्वपिति स्वकरेण विमुद्रित नीविकुचद्वय गोपम्,
सा सभयं सनिरो[2] वचस्सकुतूहलमेव सकम्प सकोपम्॥

इतिमुग्धा।

अथ मध्यालक्षणम्—

[19]

Dohā

मध्या भवति चतुर्विधा, रूढयौवना सा च।
प्रादुर्भूत मनोभवा, सुप्रगल्भवचना च॥

[20]

सा विचित्र सुरता पुनर्ज्ञेया वुधा वदन्ति।
तानधुना चतुरस्ततो, भेदानुदाहरन्ति॥

---

1. किञ्चित चारु।
2. स निरोध वचः।

अथ रूढयौवनोदाहरणम्--

[21]

Sawaiyā

चारुतरे[1] नयते नयने जलजातयुगं जयतीह यदिच्छा,
पीननितम्व समुच्चकुचद्वय भारनता च कटो किलकृच्छा,
सा रमणी रमणीयतरा नवयौवनलोक[2] जयैंकाजिघृच्छा,
शोभितनुं स्वतनुं त्ववलोकय चेदिह चेतसि तेऽपि दिदृच्छा ॥

अथ प्रादुर्भूत मनोभवोदाहरणम्—

[22]

Sawaiyā

भूषितवेषविशेष विरुचे[3] सततं तव जाति मनोगुणगण्ये,
कामकला कुशलं तु वचो गतिमन्द पदेन विमोहित[4] जन्ये,
जातमतर्कित रूपमिदं तु विलोकयतः कृतिनोऽपि किमन्ये,
पश्यसि यस्य मुखं सखि ! संप्रति धन्यतमं तमहं ननु मन्ये ॥

---

1. चारुतरे नयने जलजातयुगं जयतेधिय दक्षा ।
2. पूरित प्रेम पिपृक्षा ।
3. विधौ ।
4. विमोहति ।

अथ प्रगल्भ वचनोदाहरणम्--

[23]

Sawaiyā

प्राणपते ! रसिकभ्रमर ! भ्रम विभ्रम भूरिरसं पिब पेयम्,
कैरविणीं वनितामवलोकय दुर्लभमम्बुजिनी धव गेयम्[1],
चेदधुनैव न गच्छसि तत्र पुनर्नच जातुमनः प्रिय देयम्,
भास्वति घस्रपतावुदित[2] तया मुखमुद्रणमेव विधेयम् ।।

अथ चित्र सुरतोदाहरणम्--

[24]

Sawaiyā

वाल मरालरुतं मधुरध्वनि मेखलयाऽनुकृतं सुचरित्रम्,
जातकपोत कपोतरवोऽनुकृतोऽपि तया भणितै रतिचित्रम्,
नीरदनाद भयस्य मिषेण सुखेन परिष्वजति प्रिय मित्रम्,
चुम्बति मन्दवचः कथनेन तथा सुरतं प्रकरोति विचित्रम् ।।

इति मध्या ।

अथ प्रौढा--

[25]

Sorathā

लब्धा पतिरिति सैव, या समस्तरति[3] कोविदा ।
कान्तप्रिया तथैव, पुनरपि भवति सविभ्रमा ।।

---

1. हेयम् ।
2. गन्तुमना रजना वसिषत्वमतो ।
3. समस्त रस कोविदा ।

[26]

Doha

चत्वारो भेदा अमी, प्रौढाया: प्रभवन्ति ।
प्रत्येकं समुदाहृता स्तेषामथ कथयन्ति ।।

अथ लब्धापति प्रौढोदाहरणम्--

[27]

Sawaiyā

कियन्ति न सन्ति पयोजवनानि वने विलसन्ति लसन्ति सदैव,
बिनैव विशेष रुचिं कमपीह जनेषु न पृच्छति कोऽपि कदैव,
पतिर्मम शोण सरोजकलों कुरुते श्रुति भूषणमालि यदैव,
विभिन्न वियोग वपुरुधिरारुण मारशरत्वमुपैति तदैव ।।

अथ समस्तरस कोविदोदाहरणम्—

[28]

Sawaiyā

रमसा सुरत प्रचलन्नत्र नूपुर कंकणकिंकिणिका रणितम्,
सुखधाम मधा[1] मधुरन्तु भवेदभिरामयुतं सुरते भणितम् ।
उभयोरपि[2] यत्र कलाकृतिनो रति कोमल केलिकला गणितम्
कथयामि निरन्तरमालि ! तदैव परस्पर प्रेमपरं पणितम् ।।

1. सुधामधुरं तु ।
2. दतिया राज्य पुस्तकालयस्थ प्रतौ पंक्तिरियं नास्ति ।

अथ कान्त प्रियोदाहरणम् —

[29]

Sawaiyā

मनस्सभयं भवतीति शिरो मम नाथ ! निजे सुभुजेऽपि निधेहि,
निजोरसि धेहि मदीयमुरपरितः परिरम्भ विधिञ्च विधेहि,
तदाऽहमपि स्वपिमीर[1] मुखं सुमुखं प्रिय चीनपटेन पिधेहि,
भवन्तमिदन्तु कथं कथयामि तु कामपि कामकथा मवधेहि ॥

अथ सविभ्रमोदाहरणम् —

[30]

Sawaiyā

वरवर्णिनि ! रूपमिदं[2] कथं तव सर्वशुचेः कचनम्,
रसरास विलास रसावश हास विचित्र चरित्र रुचे रचनम्,
मदनज्वर आलि ! विलोकयतस्तु तथापि करोतु मनः पचनम्,
यदपीं मुखदच्युतमिन्दु मुखि ! श्रृणुते ससुधामधुरं वचनम् ॥
इति प्रौढ़ा ।

---

1. तदाहमिहस्व सुखं स्वमुखं प्रिय प्रीत पटेन पिधेहि ।
2. कथयामि कथं ।

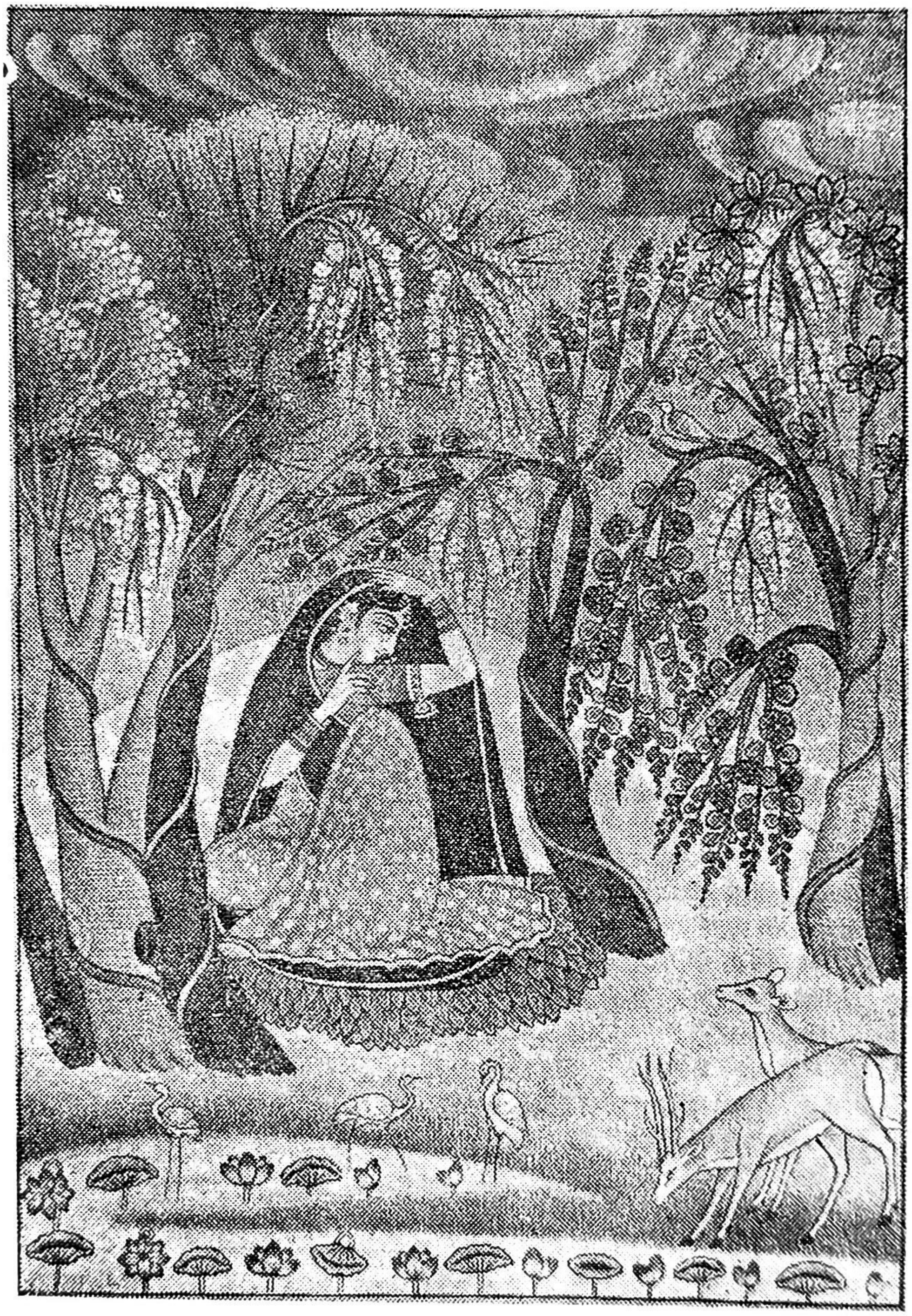

Vāsakasajjā

अथ मुग्धादीनां सुरतस्वरूपाणि उच्यते ।

तत्र मुग्धा सुरतोदाहरणम्—

[31]

Sawaiyā

वदतीति नवोढवधूं दयितो दयिते ! गुणयौवनशीलनते[1],
भयमत्र मतं न विधेहि रतिं वितनोमि मनोऽभिमतं ननु ते ।
अथ सा तु महाभयकोपयुताञ्च सकण्टक कम्प तनुं तनुते,
विमुखं परिरम्भ सुखं पुनरेव मनागपि रन्तुमना मनुते ॥

अथ मध्या सुरतोदाहरणम्—

[32]

Sawaiyā

सा दयिता सुरतं कुरुते परिरम्भणपूरित प्रेम प्रकाशम्,
सत्रपमत्र विचित्र वचः स पवित्रवहित्र चरित्र विकाशम् ।
साऽलसमेव स विस्मित सस्मित सुन्दर शोभि सुधासम हासम्,
साऽति[2] विमोह मुखं सुमुखं समयं सदयं सरसं सविलासम् ॥

---

1. दयते गुणयौवन सील नुते ।
2. तात विमोह सुखं ।

अथ प्रोढा सुरतोदाहरणम्—

[33]

Sawaiyā

चुम्बन चाटु वचो मुखदानपरा[1] परिरम्भ सदम्भ सदङ्का,
कामकला कुशला सुरते कलकोमल कोकिल कूजित[2] शङ्का।
केलि बचलद्[3] गतिरिन्दुमुखी श्रमविन्दु विराजित चन्दनपङ्का,
मोहमिता न विवेद पुनः क्रियते किमिति क्वच कोऽयमहङ्का।।

अथ मुग्धादीनां मानावस्था—
तत्र मुग्धा मानः—

[34]

Sawaiyā

उषसि प्रियमागत मन्यगृहादुपलभ्य वधू रपराधजुषम्,
न शशाक वचो गदितुं परुषं न रुषञ्च चकार विहाय सुखम्।
परिमृज्य चले[4] नयने शयने पतिता सुदती रुदती विमुखम्,
परिरभ्य च तेन तदा पुनरेव समुन्मुखिता[5] परिचुम्ब मुखम्।।

---

1. नखु दान।
2. कोमल कुंजित पूरित संका।
3. केलि चलद्युति।
4. जले नयने सयनेग्य धृता।

अथ मध्यामान: —

[35]

Dohā

मध्या मानवती यदा, त्रिधा तदा भवतीह ।
धीराऽधीरा मध्यमा, तथा प्रगल्भाऽपीह ।।

[36]

कोप व्यञ्जकमय परुष, वचो रुदित वचनञ्च ।
औदास्यं सुरतं वच स्तर्जनादिरचनञ्च ।।

[37]

औदास्यं तर्जन वचः, क्रमतस्तयो रवेहि ।
उभयोरपि षड्भेदयो, रुदाहरणमाभिदेहि ।।

अथ मध्या प्रौढयो र्धीरादि षड्भेदानां क्रमेणोदाहरणान्युच्यन्ते ।
मध्याधीरा यथा—

[38]

Sawaiyā

अहो ! विपरीतफलं किमिदं वदतीति मनो मम नाथ ! बिभेति,
परन्तुं निरन्तरमेव नमामि यतो[1] भवतो भयगामिन वेति ।
द्वितीयतिथेरिह चन्द्रकलेव नभोनिभ वक्षसि ते समुदेति,
प्रभात[2] दिवाकर खण्ड कलेव कपोल तले विमले रुचिमेति ।।

---

1. किमीय मदः क्षतमेत दुखस्यभ्यतोधिक मत्र महारुचिरेति ।
2. वदामि विचित्र चरित्र धरेति ।

मध्याऽधीरा यथा—

[39]

चेतसि ते वसति प्रिय ! सैव समोहित दानवचो नमनीया,
कोपपरां हि वधूरपरा प्रभवेदिह काऽपि कथं कमनीया ।
या जननाथ ! निकुञ्जवने भवने भवता सततं गमनीया,
स्याम[1] वयं तु तया न यथा तव संप्रति सा रमणी रमणीया ।।

मध्याधीराऽधीरा यथा—

[40]

कथयामि कथं सुकृतं तव नाथ ! गुणेन च कस्य गुणं सदृशम्,
परिपालय प्रेम तदीयमितोऽपि भवेदिह नैव कदापि कृशम् ।
रमण व्रज यत्र विभो ! भविता[2] करणीयमहो कृतिना च भृशम्,
दयितं प्रति संप्रति मोहमिता वहदश्रु जलेन पिधाय दृशम् ।।

अथ प्रौढाधीरा यथा—

[41]

याहि तदीयमितस्सदनं वदनं न च दर्शय मामभिवादम्,
धृष्ट ! किमत्र तव प्रवदन्त्यबलेति निविध्यस्रजा सविषादम् ।
सा निजघान वधूरधिकं[3] पुरतः पतितं पतिमाधृत पादम्,
पावक यावक रागभृता चरणेन चलन्नव नूपुर नादम् ।।

---

1. स्याम वधुं तु ।
2. भवता ।
3. वधूरपिकं ।

अथ प्रौढाऽधीरा यथा—

[42]

Sawaiyā

नु मौनमिदं घनमालि[1]! कथं हरिणी नयने ! शयनेऽपि न यासि,
विचित्ररुचे रचनं[2] वचनं रसधाम सुधामधुरं वतु भासि ।
समागतमद्य शुभे शरणं चरणे न पतिं[3] परिपासि,
जने यदि कुप्यसि कुप्य तदा दयिते दयितेनुकथं कुपिताऽसि ।।

अथ प्रौढा धीराऽधीरा यथा—

[43]

Sawaiyā

न किञ्चिदलीक वचो वद वादक कामकलामिह[4] तेऽनुभवामि,
अवैमितवाऽपि सुखैक सखीमपि तामपि दूरत एव नमामि ।
यथाऽपि भवानपराध्यति पश्य तथाऽपि न पादहतिं विदधामि,
किमर्थमनर्थक ताम्यसि रे ! वहु ते सुरतं सुमतं कथयामि ।।

इति प्रौढा मान भेदत्रयम् ।

अथ मध्याप्रौढयो ज्येंष्ठाकनिष्ठ उपलक्ष्येते ।

[44]

Dohā

अन्यून[5] प्रीतिक्रमा, ज्येष्ठा कनिष्ठिकाऽपि ।
भवति भर्तु रिह सदृश, गुणवस्सुपरिणीताऽपि ।।

---

1. वरमाल ।
2. रचने वचनं ।
3. पतितं ।
4. कामिह कामुकता ।
5. वध्यूत प्रीति क्रमज्जेष्टा कनिष्टापि ।

अथ ज्येष्ठाकनिष्ठोदाहरणम्—

[45]

Sawaiyā

दयितो रमयन् दयिताद्वय मप्युभयोः परिपूर्य्य मुखं सदृशम्,
तदपि प्रियया[1] बहुशः परितुष्यति तत्र मनो रमतेऽति भृशम् ।
प्रकटीकृतमद्य विलासमिषेण मुखं परिचुम्ब्य शनैरकृशम्,
अपरामपहूय विघूयतरां भुजयोर्विनिधाय विधाय भृशम् ।।

इति स्वीया ।

अथ परकीया भेदद्वयमुपलक्ष्यते—

[46]

Sawaiyā

कस्य वरस्य[2] नरस्य मुखं सखि । पश्यति पश्य रुचिं वितनोति,
चन्द्रमुखी सुवचास्सुदृशा कमुदीक्ष्य चकोरमिवाभिषुणोति ।
केयमहो ! हृदि मोदकरी सुमतेरपि मानमनो विधुनोति,
सत्रपनेत्र विचित्र[3] गतेः शतपत्र पतत्र-ततिं वितनोति ।।

तस्या अन्तर्भाव निरूपणम्—

[47]

Dohā

गुप्ता वचन विदधिका[4], लक्षिताऽपि कुलटा च ।
अनुशयना मुदितेह, परकीयान्तर भावा च ।।

---

1. तदपि प्रिय वाच मनो युवि योषित तस्य मनो रसमेतिं भृसम् ।
2. सुसस्य नरस्य ।
3. सत्रपनेत्र विचित्र गतैः सतपत्रक पत्र ततिं वितनोति ।
4. विदग्धिका ।

गुप्ता लक्षणम्—

[48]

Dohā

पर पुरुषस्य रतिञ्च या गोपायति प्रमदेहि।
तां गुप्तां हि मनीषिणः कथयन्तीत्यवधेहि ॥

उदाहरणम्—

[49]

Sawaiyā

अद्य मया तु कृतं गमनं नवकुञ्ज कुटीं निकटामनुमाय,
यत्र मदीय मुखे भ्रमराः कलयन्ति रुतं जलजञ्च विहाय।
तैरदनच्छदनस्य रसः परिपीयत एव सुलक्ष्म विधाय,
हे सखि ! तत्र न गन्तुमना प्रभवामि कदाऽपि सुमाऽवचाय[1][वचयाय]।।

विदग्धा लक्षणम्—

[50]

Dohā

या पथिकस्य मनो हर[2] त्युक्त्वा वहुवचनानि।
रमते तेन सहैव सा वचन विदग्धाऽमानि ॥

---

1. अनुमीयते, प्रतिलिपिकारेण शीघ्रतावशात् 'वचाय' इति लिखितम्।
2. अत्र कर्त्तुः एकवचनान्ते सति कथं 'हरन्ति' इति शुद्धम्।

[51]

Sawaiyā

भोः पथिक ! द्युमणौ परिचुम्बति तं चरमाद्रि मतीव प्रकाशम्,
त्वं परिपश्य विधुर्गमने परिरभ्य निशां समुदेति सहासम् ।
शोभि सरित्तट कुञ्जमिदं प्रतिभाति तथैव सयुक्ति निवासम्,
गन्तुमना भवनाऽपि[1] च कुत्र विधे ह्यपवेशनमत्र विलासम् ।।

लक्षिता लक्षणम्—

[52]

Dohā

यस्याः सुरतं सखिर्जनैर्विदितं भवति तमाञ्च ।
तां सुमनीषी लक्षितां सततं वदतितराञ्च ।।

उदाहरणम्—

[53]

Sawaiyā

हे वरवर्णिनि ! कज्जलबीतरुचि नयनस्य युगं निदधाति,
बिम्ब रदच्छदनञ्च विमृष्ट सरागमवेहि सुधामवयाति ।
वक्षसिजौ कलितौ नखरै हर[2] सोऽपि सुगन्धिरसं किलवाति,
किं परिगोपयसि त्वमथो सुरतं तव शोभितनौ प्रतिभाति ।।

---

1. भवताऽपि ।
2. नखरैहरसोऽपि ।

Rūpagarvitā

कुलटा लक्षणम्—

[54]

Dohā

क्रत्वा वहुभिर्या रतिं, तृप्ति गच्छति नैव ।
तां कुलटां कलयन्ति किल कवयो द्रुतं तथैव ।।

उदाहरणम्—

[55]

Sawaiyā

कस्य मनो न हरत्यधुना रभसादिह कस्य वचो न श्रृणोति,
कं प्रति वीक्ष्य दृगम्बुजयोरपि हावगणैः सुरतिं न तवोति[1],
कस्य लसद् भुजवल्लिकयेव तनुं परिरभ्य मुखं न सुनोति ।
कं मदनस्य शरैरबला निशितैश्चलितं पथि सा न धुनोति ।।

अथ अनुशयना लक्षणम्—

[56]

Dohā

संकेतस्थलतः पतिं गतागतं विनिरीक्ष्य ।
खिद्यतेऽनुशयना वधूः स्थकिता परितो वीक्ष्य ।।

1. तनोति ।

उदाहरणम्

[57]

Sawaiyā

काचिदियं दयितं परिवीक्ष्य समागतमेव निकुञ्ज कुटीतः,
वेणुरुतं कलयन्तमथो विचकासत मा शुचि पीतपटीतः।
मञ्जुकरे दधतं जलजं विलिखिमथो[1] धरणीं लकुटीतः,
सा श्वसतोह् तदाश्रु[2] विमुञ्चति नेत्र सरोवर चारुतटीतः॥

अथ मुदिता लक्षणम्—

[58]

Dohā

मनोऽभिलाषि चरित्रकं, पथि सुपर्ति दुष्ट्वेहि।
श्रुत्वा माद्यति या पुनर्मुदितां तामवधेहि॥

उदाहरणम्—

[59]

Sawaiyā

काचिदियं वनिता यमुनातट कुञ्जगृहस्थ[3] पुरः प्रतिभाति,
कैरपि चेह् वचः प्रतिश्रुत्य मदीय पतिः स्त्वरितस्त्वीभयाति[4]।
क्रोशयुगं विनिरोक्षित मुत्सव मारभसादिति चाह् दधाति,
तत्र समागत नन्दसुतं विनिरीक्ष्य मुदं हृदये निदधाति॥

इति परकीया।

---

1. विलिखन्तमथो।
2. तदाऽश्रु।
3. गृहस्य।
4. स्त्वरित स्त्वभियाति।

अथ सामान्य वनिता लक्षणम्—

[60]

Dohā

या धनमात्र समीहनैर[1] ऽन्यदीहते नैव ।
सा सामान्या नायिका कथिताज्ञैश्च सदैव ।।

उदाहरणम्—

[61]

Sawaiyā

वारवधू रियमद्भुत यौवन रूप कला कुशला रतिधाम,
कस्य महाधनदस्य विलासिवरस्य सुधन्यतरस्य जगाम ।
प्रातरुपैति निजं सदनं विहसद्वदनं विकसद् मणिदाम,
दीप्तिमवेक्ष्य रुचा विजिता सखि ! का चलिता वनिता न[2] ताम ।।

अथ स्वीया परकीया सामान्य भेदाः —

[62]

Dohā

एतास्तिस्रो नायिकाः पुनस्त्रिधा विलसन्ति ।
गर्विताऽन्यरति दुःखिता मानिन्यः प्रभवन्ति ।।

---

1. समीहतै ।
2. बनिता न च ताम ।

गर्विता लक्षणम्—

[63]

Dohā

रूप प्रेम सुगर्वमिह या धत्ते मनसा च।
विद्वद्भिः परिकथ्यते तमां[1] गर्विता सा च।।

उदाहरणम्—

[64]

Sawaiyā

अन्यतरे रचयन्ति सदा निज दारतनौ किल भूषणवृन्दम्,
कर्णयुगे कलयन्ति दृशोः समतां कमलेन सहैव सनन्दम्।
श्रीफलवत्कुचयोर्विसृजन्ति सकेशर सैकमपीद ममन्दम्,
हे सखि! मत्तनुद्रष्टुमनाः पतिराभरणं न दधाति हि शन्दम्।।

अथ सुरत दुःखिता लक्षणम्—

[65]

Dohā

स्वप्रियेण साकं रतिं याऽन्यस्त्रिया निरीक्ष्य।
ब्रूते क्लिष्ट वचोऽन्य रति दुःखिता हि तां वीक्ष्य।।

1. परिकथ्यते, तां।

उदाहरणम्--

[66]

Sawaiyā

निर्गत कज्जल नेत्रयुगं परिभृष्टसुरागमुभोष्ठ मवेहि,
धौत महो ! किल केसर सेक मुरोज तटे नखराणि निधेहि।
तन्वि ! तवैव वपुः प्रतिभाति पुनः पुलकाङ्क युतं च मुदेहि,
तत्कलयामि विगाढमये ! सुखदेषु सरस्सु गता किमपेहि ।।

अथ मानिनी लक्षणम्—

[67]

Dohā

प्रियाऽपराधं वीक्ष्य या मानं मनसि दधाति ।
प्राज्ञस्तामिह कामिनीं मानिनीं[1] च विख्याति ।।

उदाहरणम्--

[68]

Sawaiyā

प्रातरुपागत एव सुकृत्य परप्रमदारदनच्छद पानम्,
निद्रित चक्षुषि संधसीत्युरसि द्रुतकं स्वरमश्रु निदानम्।
नो कुरु मन्युमयीषृमतौ सुगृहाण धनञ्च विधेहि सुगानम्
त्वच्चरणाम्बुजयोः पतिते दयिते त्वधुना त्यज मानम् ।।

इति जात्यादि भेदाः ।

---

1. मानिनीं विख्याति ।

अथ तासामवस्था भेदाः कथ्यन्ते--

[69]

Dohā

प्रोष्यत् पतिराधीना पतिरुत्कण्ठिता तथैव ।
कलहान्तरिता खण्डिता विप्रलब्धिका चैव ।।

[70]

Dohā

बासक सज्जेति च तथाऽभिसारिकेति सन्ति ।
भेदा इत्यष्टौ यथाऽवस्थास्तु प्रभवन्ति ।।

अथ प्रोष्यत्पतिका लक्षणम्--

[71]

Dohā

पतिरगमद् दत्ताऽवधिं यस्याः परदेशन्तु ।
प्रोष्यत् पतिरिति कोविदास्तन्नामो पदिशन्तु ।।

उदाहरणम्—

[72]

Sawaiyā

अश्रुभिरेव पुराचलितं वलयैरपि चाक्षु गतेऽदय[1] याने,
बुद्धिरथाऽपि मनोऽपि गतं विमुखञ्च सुखं सखि नाथ प्रयाणे।
किं किमगान्न परन्तु तनाविह दुःखमुपैति नु दुःख निधाने,
नष्टगति निरपत्रप एष जनो न गतस्तद हन्तु न जाने॥

अथाऽधीनपति लक्षणम्—

[73]

Dohā

यदधीनः पतिरधिवसति यदभिमतं विदधाति।
सैवाधीनपतिः सचेद परां जातु न पाति॥

उदाहरणम्—

[74]

Sawaiyā

भर्तु रति प्रियकर्तु रिह प्रमदा सुखदा नहिका निभृतम्,
प्रेम परन्त्वनयोरिव कुत्रचिदीक्षित मेव न पूर्णधृतम्[2]।
येन कृतेन कृतं सकलं सखि ! तत्वनयैन [नयैव] कृतं सुकृतम्,
यदवशगः पतिरेष मुखस्य निरन्तर मेव पिबत्यमृतम्॥

---

1. चाश्रु गते दए पाणे।
2. म मानक्षतम्।

अथोत्कण्ठिता लक्षणम्—

[75]

Dohā

वाराहनि केलीगृहे यस्या न पतिरूपैति ।
शोचन्ती तदनागममुत्कण्ठितामवैति ।।

उदाहरणम्—

[76]

Sorathā

किमुदीक्ष्य घनाघनमऽत्र घनं तमसा पथि बुद्धिरथ भ्रमिता,
गुरु गर्जित वर्जित एव तडिद्द्युति तर्जित एव च वा[1] नमिता ।
कथमद्य गृहे प्रिय आगत आलि ! न कुत्र च रात्रिरहो गमिता,
रमणे ननु काऽपि[2] सुरूपमणी रमणी रमणीयतरा रमिता ।।

अथ वासकसज्जा लक्षणन्—

[77]

Dohā

प्रियाऽऽगमं निश्चित्य या सानन्दं सहसैव ।
रचयति भूषावेषमपि वासक सज्जा सैव ।।

1. चकै नमिता ।
2. रमणे नमनो रम रुक्मणी ।

Rūpajīvā

उदाहरणम्—

[78]

Sawaiyā

भूषणवेष विशेषविधिं विविधन्तु विधाय विधातुमपिच्छति,
किञ्चन कुञ्चित कुञ्चित दृक् चकितेव वपुः स्फुरणानि प्रतीक्षति ।
निर्मित भाल लसत् तिलकं विलसन् मुकुरेऽभिलषन् मुखमीक्षति,
सायमसौ समनोरथमिष्ट समागमने समयं समुदीक्षति ।।

अथ कलहान्तरिता लक्षणम्—

[79]

Dohā

मतिमवमत्य पुनर्महा दुखं मनसि जगाम ।
सा कथिता कवि कोविदैः कलहान्तरिता नाम ।।

उदाहरणम्—

[80]

Sawaiyā

परितप्य पुनः पुनरेव धुनोतु शिरोहृदि शोक उपारमितः[1]
कथयत्युदिताश्रुरहो ! कथ मद्यवता ऽभिमतोऽपि महानयितः ।
किमकार्यबमानित ईहित सद्मनि यत्र जनः सततं लयितः,
प्रियवल्लभ एष विनष्ट धिया समया सखिभिर्दयया दयितः ।।

---

1. उपाश्रमितः ।

अथ खण्डिता लक्षणम्—

[81]

Dohā

नायात: सङ्केतिते पतिरन्यां संमुज्य[1] ।
सा खण्डिता यदागत तच्चिन्ह्नानि नियुज्य ।।

उदाहरणम्--

[82]

Sawaiyā

कृत जागर एव वनेन्यवस:[2] प्रजयन् निशि कामद मन्त्रमलम्,
सततं समता मदनेन तथा समयादि मनोभव देव बलम् ।
जयनाथ ! जनश्रवणे श्रवणेन पुनाति तवाऽद्य यशोविमलम्,
कृतमद्य[3] विभो ! भवताऽखिल सिद्ध समृद्धि सुखैक गणं सुफलम् ।।

अथ विप्रलब्धा लक्षणम् —

[83]

Sawaiyā

दत्वा सङ्केतं स्वयं तत्र न पतिरुपयाति ।
विप्रलब्धिका तत्प्रिया गत्वा सुखं जहाति ।।

---

1. संयुज्य ।
2. वनेपि वसन्त ।
3. किमलाभित दैव यिभो दयताऽखिल सिद्ध समृद्धि सुखैक फलम् ।

उदाहरणम्—

[84]

Sawaiyā

प्रिय प्रेषित दूतिकयैत्य कृतो वचनैरनुरागभरः प्रचुरः,
समभूदमितोऽथ वियोग वितर्जि पयोधरगर्ज्जि रवो मधुरः ।
अभिसृत्य तदा सुसमीक्ष्य[1] पतिं न तु दूरत एव चकम्प उरः,
किल न स्म निवर्तत एव बधर्न च तिष्ठति न स्म चचाल पुरः ॥

अथाभिसारिका लक्षणम्—

[85]

Dohā

क्षिप्रे मति मदनेन[2] या व्यथिता मदन शरेण ।
समभिसर[3] त्यभिसारिका कथिता सुकवि वरेण ॥

उदाहरणम्—

[86]

Chhappaya

सायमसौ रति कुञ्जगृहे सखि ! गच्छति शम्भुरिपो रबलेव,
नील रुचाऽम्बरकेण वृता कलधौत कलद्युति रिन्दुकलेव ।

1. स्वय मीक्ष्य ।
2. क्षिप्रं पतिं मदेन या ।
3. साऽभिसरत्यभिसारका ।

कीदृगशोभि तमाल तलोपविशन्त्यु पमातु तदा सकलेव,
श्याम घनैः सुघनैर्मिलिता तमसा गिलिता[1] चलिता चपलेव ॥

इत्यवस्था भेदाः ।

इति संक्षेपेण नायिकानां मुख्य भेदाः ।

अथ नायक भेदाः कथ्यन्ते—

[87]

Dohā

अनुकूलो दक्षस्तथा[2] धृष्टः शठ नर एव ।
भवति चतुर्धा नायकः संवर्णय कवि देव ॥

अथाऽनुकूल लक्षणम्—

[88]

Dohā

सदैवैक नारीरतः सो ऽनुकूल इत्येव ।
दक्षः सर्ववधूष्वथो सम प्रीतिकर एव ॥

---

1. गीलता ।
2. अनुकूलोऽपि च दक्षिणो ।

उदाहरणम्—

[89]

Sawaiyā

किन्न कृतं सुकृतं त्वनया किमताऽपि तपो नहि पातक पाति,
किं किमकारि न किं किमदायि सर्वमद:[1] शुभदं प्रतिभाति।
शक्तिमिवाद्भुत भक्तियुत: सविनौति मनोऽभिमतं विदधाति,
धन्यतरोऽय मनन्यगति र्दयितो दयितोदित मेव दधाति॥

दक्षोदाहरणम्—

[90]

Sawaiyā

दक्षतया रमयन् स उभे परिगोप्य मनोऽपि मनोज विधूतम्,
कामपि वीक्ष्य[2] सरोजदृशं त्वितरश्रियि चक्षुरदायि सभीतम्।
स परिचुम्ब्य तदीयमुखं नमयन् सहकार तरुं मधुदूतम्,
लिंगितवानवलोक्य परामपरा मवलोकयतो मुत[3] नूतम्॥

शठधृष्टयोर्लक्षणम्—

[91]

Dohā

कपट स्नेह प्रकटित: शठस्तु धृष्ट इतीह।
निश्शंको निरपत्रपो मुहु स्सदोषो ऽपीह॥

---

1. परं त्वाह सर्वमद: प्रतिभाति।
2. कामि पवीक्ष्य कुतोऽपि दृशं तु तिरस्त्रि श्चक्षुरदाय सभूतम्।
3. तीति मुखं तव तूतम्।

उदाहरणम्—

[92]

Sawaiyā

प्रातरपाकृत एव मयाकृत दोषभरः कथयन् नहि नेति,
किं किमहं कथयामि यदस्य कदाऽपि न सत्यवचः समुदेति ।
नित्यमसौ दिवसे निवसन् निरपत्रप[1] एव कुतो न विभेति,
शिक्षय संप्रति तं प्रति किं करवाणि स किं करवत् पुनरेति ।।

अथ धृष्टोदाहरणम्—

[93]

Sawaiyā

चित्रमिदं किमु[2] दर्शयसि त्वमतीव विचित्रमुखं तनुरूपम्,
भालतले तु लसत्तिलकं जयतीह मनोज यशो जयरूपम्,
कीदृगिदं निशि जागरणाऽरुण घूर्णित नेत्रयुगं स्मर[3] रूपम्
अद्यतनं त्वनवद्य तनोति सुखं मम सद्य उदीक्ष्य सुरूपम् ।।

इति संक्षेपेण नायक भेदाः ।

---

1. निरुनिष्य परत्र कुतो न विभेति ।
2. ननु ।
3. रुचभूपम् ।

अथ नर्मसचिव लक्षणम्—

[94]

Dohā

तस्य नर्म सचिवः सखा तद् भेदकत्रयी ह ।
पोठमर्द नामा विटो विदूषको भवती ह ।।

पीठमर्दादयो लक्ष्यन्ते—

[95]

Dohā

सुदृशां मान विमोचको भवति पीठमर्द्दस्तु ।
[1]पीठमर्दनामा विटो विदूषको भवती ह ।।

तत्र पीठमर्दोदाहरणम्—

[96]

Sawaiyā

मान विवर्ज्जि वियोग वितर्ज्जि सुगर्ज्जि घनं विकिरन्नभितोयः[2],
तन्वि ! वितन्विह रागसमन्वितचित्त चलकरकञ्जयुगो यः ।
अत्र परिस्फुरिताधर एष विलासि विशेष निमेष धरो यः,
शावमृगाक्षि ! कटाक्षमुदेति स धन्यतम स्तव कोऽपि सको यः ।।

1. चातुर्या ननु यो विटः प्रहसन् विदूषकस्तु ।
2. घना विकरत्यभितोयः ।

विटोदाहरणम्—

[97]

Sawaiyā

त्वामिह कुञ्जवनं गतनिद्र उपास्त उपहितलोक विरक्तिः,
तद्गुण मन्त्र जयस्मरणे वत मोलित दृक् च विहातुमशक्तिः ।
अद्य सपद्यभिगम्य कृतार्थतरः करणीय उपाधिकभक्तिः,
गच्छतु सिद्धवरं ददती भवती सुप्रसादवती शिवभक्तिः ।।

विदूषकोदाहरणम्—

[98]

Sawaiyā

आनयनाय चलन्निजनाम शनैरभिगम्य विनम्य शशास[1],
चाटुवचोभिरिहाऽऽनयन यदाशु[2] च गूढतया शयनाऽध उवास ।
छद्म विधाय सुपद्ममुखीं परिरब्धुमनाः पतिराकुल आस,
चोर उपागत इत्यभिधाय च तौ सभयौ स निरीक्ष्य जहास ।।

अथोत्तम मध्यमाऽधम नायिका भेद त्रयम्—

[99]

Dohā

अहिते प्रिये हितोत्तमा हिते हिता मध्या च ।
अधमा स्यादहिता हिते चलप्रीतिरोषा च ।।

---

1. आनयना चपलन्न यनाभ चलन्नभिगम्य विनम्य ससास ।
2. नयदाश्रु च ।

Anusayānā

अथोत्तमोदाहरणम्—

[100]

Sawaiyā

विज्ञतरस्तरुणो धनवानसि पारगतो निगमस्य यथाऽपि,
कौतुक केलिकला[1] कुशलेन भृता बहुशो[2] भुवि कीर्ति कथाऽपि ।
श्री करुणामय ! पश्यसि नो करुणार्द्रदृशा यदपि त्वमथाऽपि,
जीवित[3] एष तव स्मरणेन सुजीवति[4] जीवितनाथ ! तथाऽपि ॥

मध्यमोदाहरणम्—

[101]

Sawaiyā

कुपिता कथमद्य चलन्नयने[5] नयने गमिते कथमन्यगतिम्,
न कथं कथमन्य शरण्यजने किल कोऽपि दधाति न कोपमतिम् ।
इति सोऽपि निशम्य शिरोऽपि विनम्य च तामधिगम्य चकार नतिम्,
सहसैव मुखे परिचुम्बति साऽप्युपलभ्य तथा परिरभ्य पतिम् ॥

1. केल कला कुसलो न भृता ।
2. भवता ।
3. जीवत एष ।
4. सजीवति ।
5. चलं बयने नयने गमते ।

अथाऽधमोदाहरणम्—

[102]

Sawaiyā

काकुवचो गुरुतर्जित मानगभीरगिरा भवतो ग्रह गर्जति,
वक्रदृशा कटुकान्तमुखा श्रुति सोमजुषश्च रुषो भर मर्जति।
कोप लसन्मुखमण्डल मण्डित भारुणिमेव मनो मम भर्जति,
तिर्यगटत्[1] कुटिल भ्रमर भ्रमिता भृकुटी तु किमद्य वितर्जति।

इति नायिकानां भेदान्तराणि।

अथ सखी दूत्योर्लक्षणम्—

[103]

Dohā

सुखशिक्षादिक कारिणो सहचारिणो सखीति।
दम्पत्यो र्दूतत्वकृति चतुरतरा दूतोति॥

सखी, यथा

[104]

Sawaiyā

संततमेव तदेव तवोचितमस्य मनोरुचितस्य विधानम्,
चाटुवचः सुदृढं परिरम्भण मुल्लसिता ऽऽननचुंबनदानम्।
अन्यद् भूषणमेण दृशामिदमेव सुभूषण मिष्टनिदानम्,
केलि कलादि कुरुष्व निरन्तर मन्तरमाहित कामनिधानम्॥

1. तिर्य गुढत्कुटलभ्रत वभ्रमिता।

दूती यथा—

[105]

Sawaiyā

रजनीयमनन्त सुखैक निधो रजनीकर एष सुखाग्रसरः,
इयमाह्वयतीव पिकी च चलन्निव वायु रुपैति मधुप्रसरः ।
ऋतुराज विराजित[1] राजिवने वसति प्रिय आलि ! महारसरः,
सखि ! हे विदुषि ! द्विजराजमुखि ! प्रचल प्रचलाक्षि शुभोऽवसरः ।।

दम्पत्योरन्योन्य दशनम्—

[106]

Sawaiyā

चित्रपटेसि विचित्ररुचिः पटुरीक्षत एष विलासयुतः,
स्वापगते न शुभे स्वरुचा वत येन जनो विदुषा विधुतः ।
गच्छति बाल तमाल तले करपूरित वेणु गभीर रुतः,
सैष युवा घननील[2] घनद्यति मन्दगतिः सखि ! नन्दसुतः ।।

---

1. विराजत राज वने ।
2. धननील घन धृत मन्द गति ।

[107]

Dohā

देवदत्त कवि रिष्टिका पुरवासो सचकार ।
ग्रन्थमिमं वंशीधर[1] द्विजकुल धुरं बभार ॥

इति श्रीमद् देवदत्त कविकृता
श्रृङ्गार विलासिनी
समाप्ता ।

1. धंसीधरः ।

ŚṚṄGĀRA VILĀSINĪ

APPENDIX

(A) MANUSCRIPTS UTILISED

This edition of the treatise is based on the four following Mss. of the work available so far.

A. In the state library Datia (M. P.) As the Mss, in the library are not lent out, transcript of the original manuscript has been used for completing the edition. The transcript was obtained by Shree Udai Shanker Dubey, Sūtra Saṇyojak of the Bhārtīya Maniśa Sūtram the institution of oriental research and studies. He supplies the following description of the original Ms.—country made paper, 20 folios, 6.7 in × 4.8, 8 lines per page, Devanagari script, in good condition, fairly well written in a large bold hand. This manuscript was copied in Samvat 1905 i. e. 1848 AD. 'Iti Sri Maddevadutta Kṛitā Sṛṅgāra Vilāsinī Samāptimagamata, var Badi 10 Samvat 1905 Śrirjayat'.

B. In the personal collection of Shree Baij Nath Kavijoo. Vill. and Post—Badauni, Dist.—Datia. The Ms being very precious and a memory of his family, he did not lend the original manuscript, but a transcript of the same he kindly sent to us for use. As the description of the original Ms given by him, shows this to be complete and fair—country made paper, 13 folios, Size 9.5 × 3.5 inches, 18 lines per page condition—New and good. Character.—Devanā-

garī. This Ms was copied in Samvat 1902 i. e. A. D. 1845, 'Iti Sri Deva Dutta Kritā Śṛṅgāra Vilāsinī Samāptimagmat. Samvat 1902. Adhika Asādha Māse Pūrṇmāsyām. Śukrawāsare. Śubhamastu, likhitam Kavi Baldeven swapathanārtham.

C. In Arya Pustakalaya, Nāgari Prachārinī Sabhā, Kāshi—No. 80 G. Śṛṅgāra Vilāsinī. Rachaitā - Deva Dutta Kavi) Iśtikapur ?) Paper—country made. folios–14 Size–9 × 5 inches. Lines 10 per page. Condition—old. Character Devanagari, obtained from—Shrce Muralidhar Keshava Deva Mishra. Tahsil—Khairāgarh, Distt—Agra. (only description).

D. Sṛngāra Vilāsinī—Deva Kaviḥ country made paper, 10 folios 25 c. m. × 15 c, m. 21 lines per page, 15 letter per lines, character Devanagari. Obtained from Shree Babu Lal Goswami, Behari Jee ka Mandir, Behari Jee road, Datia (M. P.) Manuscript is in good condition, well written in black ink and bold letters. Red ink is used to separate the sloka from one to another. According to the ink and paper used for transcription, the Ms does not seem to be old.

I have been fortunate enough to go through the Mss, I compared the above mentioned Mss A. B. with D. Thus reached to the conclusion that only the Ms B. in the personal collection of shree Baij Nath Kavi Joo of Datia District, was comparatively, complete and fair and I made the

same my base for editing the treatise because it was the oldest out of the Mss obtained.

The Catalogus Catalogorum mentions a Ms. Sṛṇgaravilās alamk. Oudh VIII 12 ascribed to Deva Dutta, which may be identical to this very treatise.

(B) ANAYSIS OF MANUSCRIPTS

I have made the Ms B. as base of this critical edition. The group of Mss A, B and D are different to some extent in condition. folios and arrengement of verses as well as Nos. The followings are omitted in Ms, B. the base of this edition.

परकीया भेद द्वयम्—

Dohā

पितुरधीन गतिरेव खलु, कथिता कन्या नाम ।
उपपति रति रति गूढ गति, रूढा वदति ससाम ॥

रूढा—

गतासिसरः स्वनाय सखि स्फुरता सिगनस्त्व वंदबु करेन,
मुखं किमुपूर्व मुदश्रुद सा वचसा च विभासि विराम प्रदेन,
कया कथया कथमाश्रु कथं श्लथ मध्यवपुर्लियतं पुलकेन,
सवेपथु मन्मथ मन्थरगे मथितं पथिकेन मनः पथिकेन ।

same my base for editing the treatise because it was the oldest out of the Mss obtained.

The Catalogus Catalogorum mentions a Ms. Sṛṇgaravilās alamk. Oudh VIII 12 ascribed to Deva Dutta, which may be identical to this very treatise.

(B) ANAYSIS OF MANUSCRIPTS

I have made the Ms B. as base of this critical edition. The group of Mss A, B and D are different to some extent in condition. folios and arrengement of verses as well as Nos. The followings are omitted in Ms, B. the base of this edition.

परकीया भेद द्वयम्—

Dohā

पितुरधीन गतिरेव खलु, कथिता कन्या नाम।
उपपति रति रति गूढ गति, रूढा वदति ससाम ।।

रूढा—

गतासिसरः स्वनाय सखि स्फुरता सिंगनस्त्व वंदबु करेन,
मुखं किमुपूर्व मुदश्रुद सा वचसा च विभासि विराम प्रदेन,
कया कथया कथमाश्रु कथ श्लथ मध्यवपुर्लियतं पुलकेन,
सवेपथु मन्मथ मन्थरगे मथितं पथिकेन मनः पथिकेन।

दम्पत्योन्य दर्शनम्—

Dohā

प्रत्यक्षे चित्रेण चास्त प्रेमं भवति तथैव।
दम्पत्योरिह दर्शनं तद् उदाहरण मथैव॥

The poet by one verse has indicatcd his aim, purpose and the reason, which inspired and enabled him to compose the treatise. The following Doha consisting of all these is lacking in Ms A (staṭe libaray Datia) which occurs in Ms B.

Dohā

रसिकमुदे सविलासजन, मनः परानन्दाय।
शुभ शृङ्गार विलासिनी, क्रियते सुकवि हिताय॥

In the same way the A (in the state library Datia) omits the stanzas Nos 47, 48, 49, 50, 51, 52, 53, 54, 55, 56, 57, 58, 50, 60, 61, 62, 63, 64, 65, 66, 67 anb 68 ie. twenty-two verses, which are not insribed in the manuscript, are of extreme value related to the subject and have made the Ms. incomplete.

[C] ALFABETICAL INDEX OF THE VERSES

Ahite 98, Aho Viparītaphalam 38 Adya Maya 40, Anyatare 64, Asrubhireva 72, Anayanaya 97, Usasi Priya 34, Etstisro Nayika 62, Audasyam 37, Kincita caru 18, Kiyanti na santi 27' Kopavyanjak maya 36, Kathayami katham, Kasya, Kasya Mano, Kacidiyam Dayitam

57, Kacidiyam 59, Kimudikshya 76, Krit Jagar 82 Kinna kritam 88, Kakuvaco 101, Kupita kathamadya 100, Caru Tare Nayate 21, Catwaro Bhedah 26, Cumban Catu Vaco 33, Cetasi te 39. Citamidam 92, Ciitrapate 105, Tatha Calajja 14, Tatha lābhate 16; Twamih Kunjavaram 96, Tridha Nayika 5 Tasya Narmasachivah 93, Daytaya Ramayan 45, Dekshataya Ramayan 89, Devadutta Kavi 106, Datwa Sanketam 83 Nayatah 81, Nu Maunamidam 42, Na Kiñcidalik 43, Nirgat kajjal Netra 66: Prāṇn-pate 23, Pratrupagat Eva 68, Priyaparadham 67, Prosyat 69, Paritapya punah 80, Priya Presita 84, Pratarapakrit 91, Bhusita Vesh 22, Bhoh Pathik 51 Bharturiti 74, Mugdha Madhyā 6, Mamāiva kimu 12, Mugdhā tadanu 13, Madhya Bhavati 19, Manassa Bhayam 28, Madhaya Manvatī 35, Manvivarji 95, Yadi Bhartadi 3, Yauvansya Kil 11, Yahi Tadiyah 41, Ya Pathikasya 50, Yasyāh suratam 52 Yadadhinah 73, Rasik Mude 2, Rantu manek vacah 17, Rabhasa Surtāh 28, Rajaneeya manant 104, Labdha Patiriti 25, Vesya Dhanamichhati 9, Val Maral ruth 24, Var Varnini 30, Vadatiti Navodhā 31, Var abadhuriyam 61, Vasakasajjati 70, Vijyatarstaruno 99, Varahani Keli Grihe 75, Sringaram rasnayakam 4, Sabhit Seel 10 Subhag Sidhi 1, Sāmanyak 7, Swiya Bhavati 8, Samprati Kasya 15, Sa Vicitra surata 20, Sa Dayita 32, Sayamasau 85. Sudrisām 95, Sukh Sikshadik 103, Santatameva Tadeva 104, He Varvarnini 53.

METRICAL ANALYSIS

The one hundred and seven verses in this treatise are written in four different. metres of which 'Sawayyā is dominant This is an astonishing historical fact that for the first time Kavi Deva Dutta (Mahakavi Deve, a prominent poet in Hindi Literature) used Hindi metres in Sanskrit in the end of the 17th century. All the metres of the Śṛṅgāra Vilāsinī' are indicated below,

Chhappaya (6)

Dohā (2-9, I1-8, 19-20, 26; 35-37, 47-48, 50, 52, 54. 56. 58. 60. 62-63. 65. 67. 69-70. 73. 75. 78. 80. 81. 83. 85 87-88. 91. 24-95. 99. 103. 107)

Sorathā (25) (10. 12. 16-17. 18 21. 22-24t 27-84. 38-46.

Sawayyā 38-46. 49. 51. 53, 55. 57. 61-62. 65-66. 69. 73. 73. 77. 81, 84. 46.89.90. 92-93. 96-98. 100-102 104-106)

FOURTHCOMING PUBLICATIONS

1. Rāmakarṇāmṛtaṃ
2. Bhattavaṅśakāvyaṃ

Edited by

SHIVA SHANKER TRIPATHI D. PHIL.